

वर्ष ४०] * * * [अङ्क ७

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर श्रावण २०२३, जुलाई १९६६

चित्र-सूची

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
(१५ शिलिङ्ग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

साधारण प्रति
भारतमें ४५ पै०
विदेशमें ५६ पै०
(१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

परमानन्द रमण

कुंवरलिपुरा



महिषमर्दिनी दशभुजा दुर्गा

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



लोके यस्य पवित्रतोभयविधा दानं तपस्या दया चत्वारश्चरणाः शुभानुसरणाः कल्याणमातन्वते ।
यः कामाद्यभिवर्षणाद् वृषवपुर्ब्रह्मर्षिराजर्षिभिर्विट्शूद्रैरपि वन्द्यते स जयताद्धर्मो जगद्धारणः ॥

वर्ष ४० } गोरखपुर, सौर श्रावण २०२३, जुलाई १९६६ { संख्या ७ पूर्ण संख्या ४७६

महिषमर्दिनी दशभुजा दुर्गा

लिएँ हाथ असि, चक्र, गदा घन, परसु, धनुषवर ।
सूल, वज्र, दृढ़ पास, कमंडलु, घंटा रवकर ॥
ज्योतिर्मय अतिसय उज्ज्वल सुभ नेत्रत्रय-धर ।
कुंडल सोभित स्रवन, सुकंकन सज्जित सब कर ॥
कंठ हार-मनि-सुमन, सिंहपर रहीं बिराजित ।
महिषमर्दिनी दुर्गा माँ दसभुजा सु-राजत ॥

कल्याण

याद रक्खो—भगवान्पर अनन्य तथा सुदृढ़ विश्वास होते ही सारी चिन्ताएँ, सारी दुःखद परिस्थितियाँ और सारी बाधाएँ अपने-आप दूर हो जाती हैं; क्योंकि तुम्हारे लिये जो कुछ भी फल निर्माण होता है, सब भगवान्के ही नियन्त्रणमें होता है और भगवान् हैं तुम्हारे सुहृद्—अकारण हित करनेवाले परम मित्र। अतएव जो कुछ भी तुम्हारे लिये बना है या बनेगा, वह सभी सहज ही तुम्हारे लिये कल्याणरूप होगा।

याद रक्खो—भगवान्के द्वारा निर्मित प्रत्येक विधान तुम्हारे लिये निश्चित कल्याणरूप है, यह निश्चय होते ही सारी चिन्ताएँ अपने-आप नष्ट हो जाती हैं।

याद रक्खो—भगवान् भलीभाँति निर्भ्रान्त रूपसे जानते हैं कि तुम्हारा वास्तविक 'कल्याण' किस परिस्थिति या किस वस्तुमें है। अतएव तुम्हारे लिये वही विधान करते हैं, उसी परिस्थिति और वस्तुको प्रदान करते हैं, जो तुम्हारे लिये निश्चित मङ्गलमयी है। भले ही वह देखनेमें प्रतिकूल हो। पर जब तुम यह विश्वास कर लोगे कि तुम्हारे लिये यह मङ्गलमयी ही है, तब तुम्हारी उसमें प्रतिकूल बुद्धि हट जायगी, अनुकूल बुद्धि हो जायगी और अनुकूल बुद्धि होते ही सारे दुःखोंका—सारी दुःखद परिस्थितियोंका नाश हो जायगा; क्योंकि प्रत्येक परिस्थिति ही अनुकूल होकर सुखस्वरूपा बन जायगी।

याद रक्खो—भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं। वे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, कोई भी ऐसी शक्ति नहीं है, जो उनका विरोध कर सके, वरं सच्ची बात तो यह है कि सारी शक्तियोंके एकमात्र मूलस्रोत या अनन्त भण्डार वे ही हैं। वे जब जिस किसी भी परिस्थिति या वस्तुके द्वारा तुम्हारा कल्याण करेंगे, तब तुम्हारा कल्याण निश्चय ही उसी परिस्थिति और उसी वस्तुके द्वारा होगा और तुरंत होगा। कोई भी बाधा नहीं रह जायगी।

याद रक्खो—भगवान् सत्यसंकल्प हैं। उनका संकल्प और संकल्पसिद्धि दोनों साथ ही होते हैं। अतएव तुम्हारे लिये भगवान्का मङ्गल संकल्प होते ही वह सिद्ध हो जायगा। सफल हो जायगा।

याद रक्खो—भगवान् कल्याणमय हैं—मङ्गलमय हैं, वे सदा ही सबका कल्याण—मङ्गल स्वरूपतः करते रहते हैं। और वे तुम्हारे परम सुहृद् हैं, इसलिये अवश्य ही तुम्हारा कल्याण करते हैं तथा करेंगे। पर तुम्हारा उनकी मङ्गलमयतापर और उनकी सुहृदतापर विश्वास नहीं है, तुम अपनी मनमानी परिस्थिति और वस्तुमें अपना कल्याण मानते हो और मनके विरुद्ध परिस्थिति और वस्तुमें अपना अकल्याण या अमङ्गल मानते हो—इसीसे अनुकूलता-प्रतिकूलताका अनुभव करते हो और सुखी-दुखी होते रहते हो। बल्कि कई बार ऐसा होता है कि तुम भूलसे यथार्थ अनुकूल परिस्थिति और वस्तुको प्रतिकूल मान बैठते हो और यथार्थ प्रतिकूलमें अनुकूल-बुद्धि कर लेते हो। अतएव भगवान्पर, उनकी सुहृदता-पर, उनकी अनिवार्य मङ्गलमयतापर विश्वास करो—अटल और अनन्त विश्वास करो तो प्रत्येक परिस्थिति और वस्तु तुम्हारे लिये कल्याणमयी—आनन्दमयी हो जायगी।

'शिव'



संतों—महापुरुषोंकी महिमा

(ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्त श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके संकलित कुछ वचनामृत)

महान् पुरुषोंका सङ्ग बड़ा दुर्लभ है और मिल जानेपर उन्हें पहचानना कठिन है; किंतु पहचानकर उनका सङ्ग करनेसे परमात्मस्वरूप महान् फलकी प्राप्ति अवश्य हो जाती है; क्योंकि महापुरुषोंका सङ्ग कभी निष्फल नहीं होता । महान् पुरुषोंका सङ्ग विना जाने करनेसे भी वह खाली नहीं जाता; क्योंकि वह अमोघ है । योगदर्शनमें तो यहाँतक कहा है कि महापुरुषोंके चिन्तनमात्रसे चित्तवृत्तियोंका निरोध होकर परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है—

वीतरागविषयं वा चित्तम् । (१ । ३७)

× × ×

महापुरुषोंका किसी भी जीवके साथ किसी प्रकारका स्वार्थका सम्बन्ध नहीं रहता, इस विषयमें भगवान् स्वयं कहते हैं—

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥
(गीता ३ । १८)

'उस महापुरुषका इस विश्वमें न तो कर्म करनेसे कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मोंके न करनेसे ही कोई प्रयोजन रहता है तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें भी इसका किञ्चिन्मात्र भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं रहता ।' तो भी उसके द्वारा केवल लोकहितार्थ कर्म किये जाते हैं ।

× × ×

वस्तुतः आजकल परमात्माको प्राप्त हुए महापुरुषोंका अभाव है, ऐसा नहीं कहा जा सकता; परंतु हमें श्रद्धाकी कमीके कारण उनका दर्शन और परिचय नहीं प्राप्त होता ।

× × ×

महापुरुषोंकी कोई भी क्रिया विना प्रयोजन नहीं होती । उनकी सम्पूर्ण क्रियाएँ दूसरोंके हितके लिये—कल्याणके लिये ही होती हैं । वे किसीसे काम लेते हैं तो उसके कल्याणके लिये ही, अपने लिये नहीं ।

× × ×

जो महात्मा परमात्मामें मिल जाते हैं, वे परमात्मस्वरूप ही हो जाते हैं । परमात्माकी पूजा ही उनकी पूजा है ।

× × ×

महात्मा पुरुषोंके दर्शनसे, उनसे वार्तालाप करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाय—इसमें तो कहना ही क्या, उनका स्मरण करनेसे भी अन्तःकरण पवित्र हो जाता है ।

× × ×

भगवान्का यह नियम है—

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।'

—जो मुझे जैसे भजते हैं, वैसे ही मैं उनको भजता हूँ । परंतु महात्माओंका यह नियम नहीं है । उनका इससे भिन्न यह नियम है कि 'जो हमें नहीं भी भजते, उन्हें भी हम भजते हैं ।'

× × ×

जैसे आगमें घास डाली जाय तो आग हो जाती है और घासमें आग डाली जाय तो आग हो जाती है ।

इसी तरह महात्माके पास अज्ञानी जाय तो वह भी महात्मा हो जाता है और अज्ञानियोंके पास महात्मा चला जाय तो भी वह अज्ञानी मनुष्य महात्मा हो जाता है; क्योंकि महात्माओंके पास ज्ञानाग्नि है, उससे अज्ञान नष्ट हो जाता है ।

× × ×

महात्माओंका ज्ञान अमोघ—अव्यर्थ है। उनका सङ्ग, दर्शन, भाषण, स्मरण सभी महान् फलदायक होते हैं।

× × ×

एक दीपकसे जब लाखों दीपक जल सकते हैं तब संसारमें एक महात्माके मौजूद रहते सब महात्मा क्यों नहीं बन सकते।

× × ×

महात्माका यथार्थ तत्त्व जाननेसे मनुष्य महात्मा ही हो जाता है, जिस प्रकार परमात्माका तत्त्व जाननेसे परमात्मा हो जाता है।

× × ×

महात्माका तत्त्व तब जाना जाता है, जब मनुष्य उनके आज्ञानुसार आचरण करता है।

× × ×

जिस मनुष्यकी भगवान् या किसी महात्मामें पूर्ण श्रद्धा हो जाती है, वह तो उनके परायण ही हो जाता है। परायणतामें जितनी कमी है, उतनी ही कमी विश्वासमें भी समझनी चाहिये।

× × ×

महापुरुषोंद्वारा किये गये उत्तम बर्तावको भगवान्का बर्ताव ही समझना चाहिये; क्योंकि महापुरुषके अंदरसे भगवान् ही सब कुछ करते-कराते हैं।

× × ×

पूर्ण महात्माओंके दर्शन हो जायँ तब तो कहना ही क्या है; क्योंकि उनके मुखसे जो शब्द निकलते हैं वे पूर्णतः तुले हुए होते हैं। जैसे एक व्यापारी अपनी दूकानका माल तौल-तौलकर ग्राहकोंको देता है—अंदाजसे नहीं। इसी प्रकार महापुरुषकी वाणीका प्रत्येक शब्द उनके हृदयरूपी तराजूपर तुल-तुलकर आता है। उनके वाक्य अमूल्य होते हैं, उनकी क्रियाएँ अमूल्य होती हैं और उनका भजन अमूल्य होता है। उनके मन, वाणी और शरीरके प्रत्येक कार्य महत्त्वपूर्ण और तात्त्विक होते हैं। उनकी मौन—अक्रिय-अवस्थामें भी विश्व-कल्याणका महान् उपदेश भरा रहता है। अतः उनका भाषण, स्पर्श, दर्शन, कर्म, ध्यान और यहाँतक कि उनकी छुयी हुई वस्तु भी पवित्र समझी जाती है।

× × ×

इस प्रकारके पुरुष यदि हमें मिल जायँ और फिर हम उन्हें पहचानकर, उनका अमोघ सङ्ग करें तथा उनकी बातोंको लोहेकी लकीर—ईश्वरकी आज्ञाके तुल्य मानकर काममें लावें तो हम अपना तो क्या, दूसरोंका भी कल्याण करनेमें समर्थ हो सकते हैं।

× × ×

गङ्गाके स्नान-पानसे जिस प्रकार बाहर-भीतरकी पवित्रता होती है, उससे भी बढ़कर महात्माओंका सङ्ग पावन करनेवाला होता है।

× × ×

जैसे अन्धकारमें लालटेनका प्रकाश होता है, उसी तरह संतोंका भी प्रकाश विकीर्ण होता रहता है। पर लालटेन जड ज्योति है, महापुरुष चिन्मय ज्योति हैं। उनके दर्शनसे ज्ञानकी वृद्धि होती है। महात्माओंके सङ्गसे हमारे छोटे-छोटे दोष भी दीखने लगते हैं। हमारे आचरणोंका सुधार होता है। हमारेमें गुण आते हैं और अवगुणों एवं दुराचरणोंका नाश होकर हृदय निर्मल बन जाता है। फिर बारीक दोष भी दीखने लगते हैं और चेष्टा करनेसे समूल नष्ट हो जाते हैं। भक्तोंके सामने कोई बुरा व्यवहार नहीं कर सकता। उनके दर्शनसे स्वाभाविक ही ईश्वरकी स्मृति हो जाती है।

× × ×

विशेष श्रद्धा और विश्वासवाले मनुष्यको किसी भगवद्भक्तका साक्षात्कार होनेपर ऐसा माळूम होता है मानो उस महात्माके द्वारा ईश्वरभक्ति, समता, दया, शान्ति, प्रेम, आनन्द, ज्ञान तथा अन्य समस्त सद्गुण उसमें प्रवेश करते जा रहे हैं। आगसे सूखी घासकी तरह हृदयके दुर्गुण भस्म होते हुए दिखायी पड़ते हैं और उस महात्माकी आँखोंमें दया और प्रेमका सिन्धु लहराता हुआ दिखायी पड़ता है।

× × ×

निस्संदेह महात्माओंकी जहाँतक दृष्टि जाती है, वहाँतक पृथ्वी-आकाश, चर-अचर सब कुछ पवित्र हो जाता है।

× × ×

शास्त्र कहते हैं—मुक्ति तो महापुरुषोंकी चरणरजमें विराजमान रहती है अर्थात् श्रद्धा और प्रेमपूर्वक महापुरुषोंकी चरणरजको मस्तकपर धारण करनेसे मनुष्य मुक्त हो जाता है।

× × ×

उन महात्माओंमें कठोरता, वैर और द्वेषका तो नाम ही नहीं रहता। वे इतने दयालु होते हैं कि दूसरेके दुःखको देखकर उनका हृदय पिघल जाता है। वे दूसरेके हितको ही अपना हित समझते हैं। उन पुरुषोंमें विशुद्ध दया होती है। जो दया कायरता, ममता, लज्जा, स्वार्थ और भय आदिके कारण की जाती है, वह शुद्ध नहीं है। जैसे भगवान्‌की अहैतुकी दया समस्त जीवोंपर है, इसी प्रकार महापुरुषोंकी अहैतुकी दया सबपर होती है। उनकी कोई कितनी ही बुराई क्यों न करे, बदला लेनेकी इच्छा तो उनके हृदयमें होती ही नहीं। कहीं बदला लेनेकी-सी क्रिया देखी जाती है, तो वह भी उसके दुर्गुणोंको हटाकर उसे विशुद्ध करनेके लिये ही होती है। इस क्रियामें भी उनकी दया छिपी रहती है।

× × ×

वे संत करुणाके भण्डार होते हैं। जो कोई उनके समीप जाता है, वह मानो दयाके सागरमें गोते लगाता है। उन पुरुषोंके दर्शन, भाषण, स्पर्श और चिन्तनमें भी मनुष्य उनके दयाभावको देखकर मुग्ध हो जाता है। वे जिस मार्गसे निकलते हैं, मेघकी ज्यों दयाकी वर्षा करते हुए ही निकलते हैं। मेघ सब समय और सब जगह नहीं बरसता, परंतु संत तो सदा-सर्वदा सर्वत्र बरसते ही रहते हैं। उनके दर्शन, भाषण, चिन्तन और स्पर्शसे सारे जीव पवित्र हो जाते हैं। उनके चरण जहाँ टिकते हैं, वह भूमि पावन हो जाती है। उनके चरणोंसे स्पर्श की हुई रज स्वयं पवित्र होकर दूसरोंको पवित्र करनेवाली बन जाती है। उनके द्वारा देखे हुए, चिन्तन किये हुए और स्पर्श किये हुए पदार्थ भी पवित्र हो जाते हैं। फिर उनके कुलकी विशेषतः उन्हें जन्म देनेवाले माता-पिताकी तो बात ही क्या है। ऐसे महापुरुष जिन देशोंमें जन्मते हैं और शान्त होते हैं, वे देश तीर्थ माने जाते हैं। आजतक जितने तीर्थ बने हैं, वे सब परमेश्वर और परमेश्वरके भक्तोंके निमित्तसे ही बने हैं। इतना ही नहीं, सब लोकोंको पवित्र करनेवाले तीर्थ भी उनके चरणस्पर्शसे पवित्र हो जाते हैं।

× × ×

महात्माओंकी पवित्रताके विषयमें जितना कहा जाय थोड़ा ही है। स्वयं भगवान्‌ने उनकी महिमा अपने श्रीमुखसे गायी है।

(संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीशालिग्राम)

मधुर

प्रेमके विशुद्ध स्वरूपमें अभिमानको स्थान नहीं है और दैन्य आभूषणरूपमें नित्य सुशोभित है। भगवान् श्रीकृष्णकी अन्तरङ्गा प्रेमप्रतिमा श्रीराधाजीके अचिन्त्यानन्त विचित्र भाव हैं; परंतु सभीमें उनके त्याग तथा दैन्य, प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरकी महत्ता और उनकी दीनताके मङ्गलदर्शन होते हैं। एक बार अपनी एक सखीको राधाजीने अपना अनुभव सुनाया। वे बोलीं—एक बार मेरे मनमें आयी कि मैं प्राणवल्लभ श्रीश्यामसुन्दरके समीप जाकर उनके चरणोंमें पड़ जाऊँ और उनकी पवित्र चरणरजसे अपनेको पवित्र करूँ। पर मनमें तुरंत यह विचार आया—

मधुर मनोहर नीलश्याम-तन
अनुपम छबिमय।
कोटि कोटि मन्मथ-मन्मथ
सौन्दर्य सुधामय॥
कहाँ दिव्य गुण-रूप-राशि
वह मुनि-मन-हारिणि।
कहाँ कुरूपा मैं अति कुत्सित
तन-मन-धारिणि॥

वे नीलश्याम-कलेवर मधुर मनोहर अनुपम शोभामय हैं, उनका सुधामय सौन्दर्य करोड़ों-करोड़ों कामदेवोंके मनका मन्थन करनेवाला है। कहाँ तो श्यामसुन्दरकी वह मुनियोंके मनको हरण करनेवाली दिव्य गुणों और रूपोंकी महान् राशि और कहाँ मैं अत्यन्त कुत्सित मन और शरीरको धारण करनेवाली कुरूपवती नारी!

यद्यपि बाहर नहीं दीखते
चिन्ह बुरे अति।
पर चल रही अहं-क्षतधारा
हृदय तीव्र गति॥
ममता मनमें भरी,
नहीं समता है किञ्चित्।
सदा रागमें रँगी,
रागसे संतत सिञ्चित॥
दीख रही ऊपर छायी
ठंढक सुखव्यापिनि।
भीतर जलती अग्नि
कामनाकी संतापिनि॥
सहज हृदयका क्रोध
छा रहा भीतर-बाहर।
लोभ हृदयमें भरा
कर्म करवाता दुखकर॥

(मेरा बाहरी रूप भी बहुत कुत्सित था। जगह-जगह शीतलाके दागके समान कुरूपताके चिह्न थे, पर वे तो किसी तरह छिप गये इसलिये) बाहरसे कोई भी कुत्सित चिह्न अब नहीं दिखायी देते, पर भीतर तो अहंकारके घावोंकी तीव्र वेदना-धारा नित्य-निरन्तर चल रही है। मनमें मेरे ममता भरी है, तनिक-सी भी समता नहीं है। मैं सदा ही राग (आसक्ति) से रँगी रहती हूँ और रागसे ही सदा सींची जाती हूँ। मुझमें बाहर सुखसे व्याप्त ठंढक छायी दीखती है; परंतु अंदर संताप देनेवाली कामनाकी आग जल रही है। मेरे हृदयका सहज क्रोध बाहर-भीतर सर्वत्र छा रहा है। हृदयमें लोभ भरा है, जो सदा दुःखदायी कर्म करवाता रहता है।

हुए प्रकट सब दोष
भयानक मेरे सन्मुख।
काँपी, डरी, निराशा-सी
छायी मेरे मुख॥
किस साहससे प्रियतमके
समीप मैं जाऊँ?
तन-मन मलिन अपार
किस तरह मुख दिखलाऊँ?

किस मुख उनसे कहूँ,
मुझे दो पदपङ्कज प्रिय !
शुचि पद-रज दे, मुझे
बना दो शुद्ध सत्त्वमय ॥

(श्रीराधाजी कह रही हैं—यों सोचते-सोचते) मेरे सारे दोष भयानक रूपमें मूर्तिमान् होकर मेरे सामने प्रकट हो गये। मैं उनको देखकर काँप उठी, डर गयी और मेरे मुखपर निराशा-सी छा गयी। (मैं सोचने लगी—हा ! इतने भयानक दोष, इतने घोर पाप !) मैं किस साहससे प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरके समीप जाऊँ ? मेरा मन और मेरा शरीर इतना मलिन है कि जिसका पार ही नहीं है, (मैं वहाँ जाकर) किस प्रकार मुख दिखलाऊँ ? और किस मुखसे उनसे कहूँ कि 'प्रियतम ! अपने चरणकमल मुझे प्रदान करो और अपनी पवित्र चरण-रज देकर मुझे विशुद्ध सत्त्वमय बना दो।'

मान नहीं मन रहा किंतु,
मचला वह अतिशय ।
चलो चलो प्रियकी संनिधिमें,
छोड़ो भ्रम-भय ॥
उठने लगी, गिरी फिर
अपनी ओर देखकर ।
घृणित दोषसे पूर्ण हाय !
मैं जाऊँ क्योंकर ?
रूप-शील-सौन्दर्य-
सद्गुणोंके वे सागर ।
अतुलनीय अनुपम सब विधि
प्रियतम नटनागर ॥
मेरे सदृश न कोई पामर
नीच घृणित जन ।
मिलनेच्छाका त्याग तदपि
करता न हठी मन ॥
तम-घन इच्छा करे
सूर्यसे मिलनेकी ज्यों ।
मेरा मन भी श्याम-मिलन-
इच्छा करता त्यों ॥
पर साहस न जुटा पायी,
स्थिति हुई भयानक ।
मर्मव्यथा अति असहनीय
जग उठी अचानक ॥

(मैं बुद्धिसे यह सब विचार कर रही थी) परंतु मन इसे मान नहीं रहा था, वह अत्यन्त मचल उठा (और उसने कहा—) 'चलो, चलो प्रियतमके समीप। (वे बड़े उदार हैं—) डर और भ्रमको छोड़ दो।' (मनकी बात सुनकर मैं उठने लगी, परंतु अपनी ओर देखकर—अपनी गुणरूप हीनता और दोषागारताको देखकर गिर पड़ी। हाय ! मैं घृणित दोषोंसे भरी, कैसे उनके समीप जाऊँ ? वे रूप, शील, सौन्दर्य और सद्गुणोंके समुद्र हैं। वे मेरे प्रियतम नटनागर सब प्रकारसे अतुलनीय और अनुपमेय हैं। इधर मेरे समान पामर, नीच और घृणित व्यक्ति कोई भी नहीं है। इतनेपर मेरा आग्रही–हठी मन उनसे मिलनेकी इच्छाका त्याग नहीं करता। मेरे मनकी यह श्यामसुन्दरसे मिलनेकी इच्छा वैसी ही है, जैसी घोर अन्धकारकी प्रकाशमय सूर्यसे मिलनेकी इच्छा हो। (सूर्यके प्रकाशसे मिलते ही अन्धकारका स्वतन्त्र अस्तित्व नष्ट हो जाता है। अतः अन्धकारके रूपमें वह कभी प्रकाशसे मिल ही नहीं सकता। तद्रूप होकर ही मिलता है। ऐसे ही भगवान्‌से मिलनेवाला भी तद्रूप हो जाता है।) (मिलनेकी इच्छा होनेपर भी) मैं साहसका संग्रह नहीं कर सकी, परंतु स्थिति बड़ी भयानक हो गयी और अचानक मेरे हृदयमें अत्यन्त असह्य पीड़ा जाग उठी।

बाह्य चेतना गयी, पड़ी
सब सुध-बुध खोकर।
अंदर प्रकटे श्याम
रूप-गुण-निधि मुनिमनहर ॥

मधुर

प्रेमके विशुद्ध स्वरूपमें अभिमानको स्थान नहीं है और दैन्य आभूषणरूपमें नित्य सुशोभित है। भगवान् श्रीकृष्णकी अन्तरङ्गा प्रेमप्रतिमा श्रीराधाजीके अचिन्त्यानन्त विचित्र भाव हैं; परंतु सभीमें उनके त्याग तथा दैन्य, प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरकी महत्ता और उनकी दीनताके मङ्गलदर्शन होते हैं। एक बार अपनी एक सखीको राधाजीने अपना अनुभव सुनाया। वे बोलीं—एक बार मेरे मनमें आयी कि मैं प्राणवल्लभ श्रीश्यामसुन्दरके समीप जाकर उनके चरणोंमें पड़ जाऊँ और उनकी पवित्र चरणरजसे अपनेको पवित्र करूँ। पर मनमें तुरंत यह विचार आया—

मधुर मनोहर नीलश्याम-तन
अनुपम छबिमय ।
कोटि कोटि मन्मथ-मन्मथ
सौन्दर्य सुधामय ॥
कहाँ दिव्य गुण-रूप-राशि
वह मुनि-मन-हारिणि ।
कहाँ कुरूपा मैं अति कुत्सित
तन-मन-धारिणि ॥

वे नीलश्याम-कलेवर मधुर मनोहर अनुपम शोभामय हैं, उनका सुधामय सौन्दर्य करोड़ों-करोड़ों कामदेवोंके मनका मन्थन करनेवाला है। कहाँ तो श्यामसुन्दरकी वह मुनियोंके मनको हरण करनेवाली दिव्य गुणों और रूपोंकी महान् राशि और कहाँ मैं अत्यन्त कुत्सित मन और शरीरको धारण करनेवाली कुरूपवती नारी!

यद्यपि बाहर नहीं दीखते
चिन्ह बुरे अति ।
पर चल रही अहं-क्षतधारा
हृदय तीव्र गति ॥
ममता मनमें भरी,
नहीं समता है किञ्चित् ।
सदा रागमें रँगी,
रागसे संतत सिञ्चित ॥
दीख रही ऊपर छायी
ठंढक सुखव्यापिनि ।
भीतर जलती अग्नि
कामनाकी संतापिनि ॥
सहज हृदयका क्रोध
छा रहा भीतर-बाहर ।
लोभ हृदयमें भरा
कर्म करवाता दुखकर ॥

(मेरा बाहरी रूप भी बहुत कुत्सित था। जगह-जगह शीतलाके दागके समान कुरूपताके चिह्न थे, पर वे तो किसी तरह छिप गये इसलिये) बाहरसे कोई भी कुत्सित चिह्न अब नहीं दिखायी देते, पर भीतर तो अहंकारके घावोंकी तीव्र वेदना-धारा नित्य-निरन्तर चल रही है। मनमें मेरे ममता भरी है, तनिक-सी भी समता नहीं है। मैं सदा ही राग (आसक्ति) से रँगी रहती हूँ और रागसे ही सदा सींची जाती हूँ। मुझमें बाहर सुखसे व्याप्त ठंढक छायी दीखती है; परंतु अंदर संताप देनेवाली कामनाकी आग जल रही है। मेरे हृदयका सहज क्रोध बाहर-भीतर सर्वत्र छा रहा है। हृदयमें लोभ भरा है, जो सदा दुःखदायी कर्म करवाता रहता है।

हुए प्रकट सब दोष
भयानक मेरे सन्मुख ।
काँपी, डरी, निराशा-सी
छायी मेरे मुख ॥
किस साहससे प्रियतमके
समीप मैं जाऊँ ?
तन-मन मलिन अपार
किस तरह मुख दिखलाऊँ ?

किस मुख उनसे कहूँ,
मुझे दो पदपङ्कज प्रिय !
शुचि पद-रज दे, मुझे
बना दो शुद्ध सत्त्वमय ॥

(श्रीराधाजी कह रही हैं—यों सोचते-सोचते) मेरे सारे दोष भयानक रूपमें मूर्तिमान् होकर मेरे सामने प्रकट हो गये। मैं उनको देखकर काँप उठी, डर गयी और मेरे मुखपर निराशा-सी छा गयी। (मैं सोचने लगी—हा ! इतने भयानक दोष, इतने घोर पाप !) मैं किस साहससे प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरके समीप जाऊँ ? मेरा मन और मेरा शरीर इतना मलिन है कि जिसका पार ही नहीं है, (मैं वहाँ जाकर) किस प्रकार मुख दिखलाऊँ ? और किस मुखसे उनसे कहूँ कि 'प्रियतम ! अपने चरणकमल मुझे प्रदान करो और अपनी पवित्र चरण-रज देकर मुझे विशुद्ध सत्त्वमय बना दो।'

मान नहीं मन रहा किंतु,
मचला वह अतिशय ।
चलो चलो प्रियकी संनिधिमें,
छोड़ो भ्रम-भय ॥
उठने लगी, गिरी फिर
अपनी ओर देखकर ।
घृणित दोषसे पूर्ण हाय !
मैं जाऊँ क्योंकर ?
रूप-शील-सौन्दर्य-
सद्गुणोंके वे सागर ।
अतुलनीय अनुपम सब विधि
प्रियतम नटनागर ॥
मेरे सदृश न कोई पामर
नीच घृणित जन ।
मिलनेच्छाका त्याग तदपि
करता न हठी मन ॥
तम-घन इच्छा करे
सूर्यसे मिलनेकी ज्यों ।

मेरा मन भी श्याम-मिलन-
इच्छा करता त्यों ॥
पर साहस न जुटा पायी,
स्थिति हुई भयानक ।
मर्मव्यथा अति असहनीय
जग उठी अचानक ॥

(मैं बुद्धिसे यह सब विचार कर रही थी) परंतु मन इसे मान नहीं रहा था, वह अत्यन्त मचल उठा (और उसने कहा—) 'चलो, चलो प्रियतमके समीप। (वे बड़े उदार हैं—) डर और भ्रमको छोड़ दो।' (मनकी बात सुनकर मैं उठने लगी, परंतु अपनी ओर देखकर—अपनी गुणरूप हीनता और दोषागारताको देखकर गिर पड़ी। हाय ! मैं घृणित दोषोंसे भरी, कैसे उनके समीप जाऊँ ? वे रूप, शील, सौन्दर्य और सद्गुणोंके समुद्र हैं। वे मेरे प्रियतम नटनागर सब प्रकारसे अतुलनीय और अनुपमेय हैं। इधर मेरे समान पामर, नीच और घृणित व्यक्ति कोई भी नहीं है। इतनेपर मेरा आग्रही—हठी मन उनसे मिलनेकी इच्छाका त्याग नहीं करता। मेरे मनकी यह श्यामसुन्दरसे मिलनेकी इच्छा वैसी ही है, जैसी घोर अन्धकारकी प्रकाशमय सूर्यसे मिलनेकी इच्छा हो। (सूर्यके प्रकाशसे मिलते ही अन्धकारका स्वतन्त्र अस्तित्व नष्ट हो जाता है। अतः अन्धकारके रूपमें वह कभी प्रकाशसे मिल ही नहीं सकता। तद्रूप होकर ही मिलता है। ऐसे ही भगवान्‌से मिलनेवाला भी तद्रूप हो जाता है।) (मिलनेकी इच्छा होनेपर भी) मैं साहसका संग्रह नहीं कर सकी, परंतु स्थिति बड़ी भयानक हो गयी और अचानक मेरे हृदयमें अत्यन्त असह्य पीड़ा जाग उठी।

बाह्य चेतना गयी, पड़ी
सब सुध-बुध खोकर।
अंदर प्रकटे श्याम
रूप-गुण-निधि मुनिमनहर ॥

करने लगे दुलार सहज
मनुहार अपरिमित ।
नहलाने बस, लगे
प्रेमधारामें अविरत ॥

मेरी बाह्य चेतना लुप्त हो गयी । (मैं बेहोश होकर) सारी बाहरी सुध-बुध खोकर गिर पड़ी । इतनेमें ही मुनि-मनका हरण करनेवाले दिव्य रूप-गुणके निधि श्यामसुन्दर अंदर प्रकट हो गये और मुझसे प्यार-दुलार करने लगे, सहज ही मेरी इतनी मनुहार करने लगे कि जिसकी कोई सीमा नहीं और बस, वे मुझको अपनी प्रेम-रस-सुधा-धारामें (अपने हाथों) नहलाने लगे !

कहने लगे—तुम्हारे
जो कुछ बाहर भीतर—
है, होता है,—छिपा न
है मुझसे रत्ती भर ॥
अहं, ममत्व, सुराग,
कामना, क्रोध, लोभ सब ।
है नित मेरे लिये,
नहीं कुछ उनमें तब अब ॥
किंतु तुम्हारा प्रेम शील
निज-गुण न मानकर ।
गुणमें करता दोष-बुद्धि
नित सत्य जानकर ॥
प्रिये ! तुम्हारा दैन्य सहज
पावन अति सुखकर ।
अतः नित्य रहता मैं
सुख-सम्पादन-तत्पर ॥

(और) कहने लगे—राधिके ! तुम्हारे बाहर-भीतर जो कुछ है, जो कुछ होता या हो रहा है, वह मुझसे रत्तीभर भी छिपा नहीं है । (मैं उसके असली रूपको जानता-देखता हूँ ।) तुम्हारा अहंकार (मुझें प्रियतम माननेके रूपमें), तुम्हारी ममता (मुझे ही एकमात्र अपना माननेके रूपमें), तुम्हारा सुन्दर राग (मुझमें अनन्य आसक्तिके रूपमें है और इसी (मेरे) राग-सुधा-रसके द्वारा तुम सदैव सिञ्चित हो), तुम्हारी कामना (एकमात्र मुझे सुखी देखनेके रूपमें), तुम्हारा क्रोध (सेवामें त्रुटि मानकर क्षुब्ध होनेके रूपमें) और तुम्हारा लोभ (अपने प्रेममें सहज कमी देखकर उसे बढ़ानेके रूपमें)—ये सब नित्य मेरे लिये हैं । (सदासे हैं, सदा रहेंगे) इनमें तब या अब नहीं है । परंतु तुम्हारा प्रेम-शील ऐसा है कि तुम अपने गुणोंको गुण न मानकर उन गुणोंमें सदा ही सचमुच ही दोषबुद्धि रखती हो । प्रियतमे ! यह तुम्हारा (अपने गुणोंमें भी दोष दिखानेवाला स्वाभाविक) सहज दैन्य अत्यन्त पवित्रकारी है और मुझे अत्यन्त सुख देनेवाला है । इसीसे मैं नित्य-निरन्तर तुम्हारे सुख-सम्पादनमें ही लगा रहता हूँ ।

अन्तर्धान हुए सहसा
शुचि रस वर्षा कर ।
खुले नेत्र अविलम्ब,
चेतना आयी सत्वर ॥
देखा खड़े सामने
मृदु मुसकाते प्रियवर ।
हुई कृतार्थ विशुद्ध
रसभरी पद-रज पाकर ॥

इस प्रकार पवित्र रसकी विशद वर्षा करके प्रियतम सहसा अन्तर्धान हो गये । उनके अन्तर्धान होते ही तुरंत मेरी आँखें खुल गयीं और उसी क्षण बाह्य चेतना लौट आयी । मैंने देखा कि मेरे प्रियतम सामने खड़े मन्द मृदु मुसकुरा रहे हैं । (मैं चरणोंमें गिर पड़ी और) विशुद्ध रसमयी चरणरजको प्राप्त करके कृतार्थ हो गयी ।



गीताका पंद्रहवाँ अध्याय

(कुछ ज्ञातव्य)

१–अर्जुनकी युद्धप्रवृत्तिका उद्देश्य है सबका हित । वे श्रीकृष्णके सम्मुख स्पष्टरूपसे अपने हृदयका उद्गार प्रकट करते हैं कि 'अहो ! हम जिन लोगोंके लिये राज्य-सुख एवं भोग चाहते हैं, वे ही अपने प्राण तथा धनका परित्याग करके मरने और मारनेके लिये युद्धभूमिमें खड़े हैं ।' इसका अभिप्राय यह है कि अर्जुन व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धिके लिये अथवा सामूहिक युद्धाभिनिवेशके वशवर्ती होकर नरसंहारमें प्रवृत्त नहीं हैं। वे धर्माधर्मका शुद्ध विवेक करके ही युद्धमें प्रवृत्त होना चाहते हैं । इसके विपरीत दुर्योधनकी बुद्धि युद्धोन्मादसे अभिभूत हो गयी है। उसको इस बातका हर्ष है कि लोग उसके स्वार्थ और अधिकार-लिप्साको पूर्ण करनेके लिये अपनी जान हथेलीपर लेकर सामने खड़े हैं और मरनेपर तुले हुए हैं—

'मदर्थे त्यक्तजीविताः ।'

केवल इतनी ही बात ध्यानमें रखकर गीताका स्वाध्याय किया जाय तो यह निष्कर्ष निकलेगा कि अर्जुनमें दैवी सम्पत्ति और दुर्योधनमें आसुरी सम्पत्ति जन्मसे ही विद्यमान है।

२–अर्जुन नर है—जीव है । श्रीकृष्ण नरके हृदयमें विराजमान नारायण हैं—वासुदेव हैं, ईश्वर । एक नरके लिये यह कितना उत्तम प्रसङ्ग है कि वह अपने जीवन-रथके सारथिके रूपमें नारायणको प्राप्त कर ले, उनकी आदेश-निर्देशात्मक वाणीका श्रवण करे और तदनुसार आचरण करे। अपने जन्म-जन्मके, माता-पिताके और इसी जन्मके संस्कारोंसे आक्रान्त जीवको सर्वभूतहित नारायणकी प्रेरणा प्राप्त होने लगे, इससे बढ़कर उसके जीवनमें सौभाग्य और उत्कर्षका दूसरा कोई क्षण नहीं हो सकता । जीवकी संकीर्ण भावनाओं और एकदेशी विचारोंको सम्पूर्ण बनानेके लिये ही भगवद्वाणीका अवतरण होता है और सचमुच भगवद्गीता वैसा ही लोकहितकारी एक पावन अवतरण है ।

३–कोई भी बाह्य परिस्थिति, जो देश, काल, वस्तुकी न्यूनाधिकता और व्यक्तियोंके विचार-भेदसे परस्पर विलक्षण और विचित्र होती है, सीधे हमारे जीवन एवं कर्तव्यका संचालन नहीं करती और न तो प्रभावित ही करती है । वह पहले हमारी बुद्धि अथवा नीयतका परिवर्तन करती है और वह बुद्धि ही हमारे क्रिया-कलापका संचालन करती है । इसलिये हमारी बुद्धिको उचित दिशामें मोड़ देनेके लिये सर्वभूतहित वाणी अर्थात् भगवद्वाणीका सर्वोपरि महत्त्व है; क्योंकि वह कर्म और वासनाओंके मूलका ही संशोधन करती है ।

४–अतीतकी स्मृतियोंमें उलझी हुई, वर्तमानके दलदलमें फँसी हुई और भविष्यकी भय-कल्पनासे आक्रान्त बुद्धि कभी यथार्थ दर्शन नहीं कर सकती। परिस्थितियोंसे प्रभावित ज्ञान पशुजीवनमें भी होता है; परंतु वह संस्कारोंके गतिहीन जड बन्धनोंसे मुक्त करनेमें असमर्थ है । राग-द्वेषरहित शुद्ध अन्तःकरणमें अभिव्यक्त होनेवाला ज्ञान ही यथार्थ दर्शन है । आत्माको मरनेवाला और मारनेवाला मानकर अपने कर्तव्यका निर्धारण करना भय और विभीषिकाके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग है और एक स्वतन्त्र यथार्थदर्शी पुरुषके द्वारा चलने योग्य नहीं है; क्योंकि उसके मूलमें अपने यथार्थ स्वरूपका अज्ञान है—

'उभौ तौ न विजानीतः'

सत्य और असत्य—दोनोंके ही जन्म-मरण नहीं होते । अपनेमें या अन्यमें जो जन्म-मरणकी प्रतीति है वह अपने अधिष्ठान एवं साक्षी आत्माका स्पर्श नहीं करती । इसलिये अपनेको अज-अविनाशीरूपमें जानना ही यथार्थ दर्शन है ।

'वेदाविनाशिनं नित्यम् ।'

यह यथार्थ दर्शन एक ओर 'न हन्यते' कहकर आत्मस्वरूपको अभय बतलाता है तो दूसरी ओर 'न हन्ति' कहकर निर्विकार और निष्क्रिय भी बतलाता है। क्या यह जीवनके लिये अद्भुत संदेश नहीं है कि आत्मा स्वरूपसे ही निष्काम और निर्भय है ।

५–मृत्यु, अज्ञता और दुःखसे भय है । अमर

जीवन सच्चे ज्ञान और स्थायी सुखकी कामना है। वस्तुतः यह भय और काम आत्माके शुद्ध स्वरूपमें नित्य निवृत्त ही हैं; क्योंकि जिनसे हम भयभीत होते हैं वे हैं ही नहीं और जिनको चाहते हैं वे नित्य प्राप्त ही हैं, अपने स्वरूप ही हैं। इसलिये जब यथार्थ दर्शन होता है, तब अविद्याकी निवृत्ति हो जानेके कारण राग, द्वेष, भय, शोक, मोह आदि दोष स्वयं निवृत्त हो जाते हैं। इसीसे हम देखते हैं कि गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णको यह पसंद नहीं है कि लोकहितकारी स्वधर्ममें प्रवृत्त करनेके लिये अर्जुनको कोई लौकिक प्रलोभन दिया जाय। कर्मकाण्डियोंके निरूपणके ढंगको वे 'पुष्पिता वाणी' कहते हैं, और उन्हें 'अविपश्चित्'। यह स्पष्ट है, यदि लौकिक फलकी प्राप्तिके लिये अर्जुन युद्धसे विमुख हैं तो ऐसे घोर कर्मसे उन्हें परलोक-प्राप्तिकी आशा भी नहीं है। यही वह भूमि है जिसमें निष्काम स्वधर्मनिष्ठाको दृढ़ करनेकी आवश्यकता होती है। सम्पूर्ण गीतामें श्रीकृष्णने बाँसुरीके मधुर स्वरके बिना ही निष्काम धर्मनिष्ठाका गम्भीर संगीत गाया है।

६—इसमें संदेह नहीं कि विषयभोग, अर्थसंग्रह और कोई महान् कर्म करनेसे जो तात्कालिक अभिमान-सुख उत्पन्न होता है, वह बुद्धिके लिये एक ऐन्द्रजालिक सम्मोहन है और बुद्धिको प्रगतिशील होनेसे रोकता है। साथ ही उन-उन पदार्थोंकी न्यूनता और अभावसे उत्पन्न दुःख बुद्धिको उद्विग्न एवं अस्थिर बनाता है। यही कारण है कि भौतिक विषयोंकी चकाचौंधके सम्मोहन, आकर्षण, प्रलोभनमें पड़ी हुई अथवा उनके द्वारा उद्वेजित एवं चालित बुद्धि कभी व्यवसायात्मिका, निश्चयात्मिका अथवा स्थितिका रूप धारण नहीं कर सकती और न तो गम्भीर तत्त्वका अवगाहन ही कर सकती है। इसलिये यह आवश्यक है कि अनुकूल और प्रतिकूल मात्रास्पर्शोंके सहनेका स्वभाव बनाया जाय। संसारका कोई भी पहला सुख अथवा दुःख चित्तपर जितनी करारी चोट करता है उतनी तीव्रता द्वितीय, तृतीय चोटमें नहीं रहती। परिस्थितियोंका चक्र सभी सुख-दुःखोंको भूतके अतल गर्भमें विलीन करता रहता है, क्रमशः उन्हें शिथिल कर देता है और भविष्यमें तो वह अपने धैर्यका एक रोचक संस्मरण बन जाता है। हम सर्वोत्तम लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये क्षणिक सुख-दुःखोंके प्रवाहमें स्वयं तितिक्षु रहकर एकरस जीवनको आगे बढ़ानेका अभ्यास बना लेते हैं तो हम जीवन-सागरका शुद्ध मथितार्थ अमृतत्व या अमृततत्त्व प्राप्त करनेके योग्य अधिकारी हो जाते हैं।

७—मुख्य प्रश्न यह नहीं है कि हमारे जीवनमें सुख और दुःखके कितने उद्वेजक या सम्मोहक प्रसङ्ग आते हैं अथवा उनका हमारे बाह्य जीवनपर क्या प्रभाव पड़ता है? इस प्रवहमान प्रपञ्चमें वैसे प्रसङ्गोंकी कमी कमी नहीं होती, प्रत्युत एकके अनन्तर दूसरा, दूसरेके अनन्तर तीसरा—इस क्रमसे वे तरंगायमान होते ही रहते हैं। हमारे लिये तो वे तब समस्याका रूप धारण करते हैं, जब हम उन्हें अभिमान और ममताके द्वारा स्वीकृति दे देते हैं कि ये सुख, उनके आकार और निमित्त मेरे हैं अथवा मैं सुखी और दुखी हूँ। यह निश्चित समझिये कि व्यक्तिगत अथवा पञ्चायती कर्मोंके फलस्वरूप जो घटनाएँ, परिस्थितियाँ और वृत्तियाँ बनती हैं, वे रात-दिनके समान केवल बाह्य स्तरको ही प्रभावित करती हैं, अपने एकरस आत्मचैतन्यपर कोई प्रभाव नहीं डालतीं। इसीसे अपनेको सुख-दुःखसे बाँध लेना या उनसे बँध जाना एक बौद्धिक स्वीकृति है, यथार्थ सत्य नहीं। विवेकको जाग्रत् रखनेपर हम कैसी भी बाह्य परिस्थितिमें सुख-दुःखको स्वीकार करनेके लिये बाध्य नहीं हैं। हम उनसे कह सकते हैं कि 'अरे ओ सुख! ओ दुःख! तुम बाहरसे ही लौट जाओ। तुम हमारे स्पर्शके अधिकारी नहीं हो; क्योंकि हम इतने उन्नत, इतने सूक्ष्म और इतने पूर्ण धरातलपर विराजमान और प्रकाशमान हैं कि तुम सम्पूर्णरूपसे संघटित होकर भी एक परमाणुके समान भी नहीं हो सकते और न हमारी छाया ही छू सकते।' निश्चय ही सुख-दुःखकी चल आकृतियाँ केवल मनोराज्य हैं और अपने स्वरूपके अज्ञानके कारण अपनेको कर्ता, भोक्ता, परिच्छिन्न, संसारी माननेवाला भ्रान्त जीव ही उन्हें स्वीकृति दे देता है। सुख-दुःखका अभिमान केवल एक भ्रान्त प्रतीति है।

८—गीताका स्पष्ट अभिमत है कि आत्मचैतन्य कर्ता-भोक्ता नहीं है—'न करोति न लिप्यते।' वह अपरिणामी, नित्य और सर्वगत है। तत्त्वतः उसमें जन्म और मरण नहीं हैं। वह अद्वितीय परमात्माका स्वरूप होनेके कारण सम्पूर्ण

प्रातीतिक प्रपञ्चका आधार होनेपर भी स्वरूपसे अद्वितीय ही है 'न च मत्स्थानि भूतानि'। प्रत्यक्चैतन्याभिन्न परमात्माके ज्ञानसे ही अपुनरावृत्ति-लक्षण मोक्षकी प्राप्ति होती है 'गच्छन्त्यपुनरावृत्तिम्।' ज्ञानी पुरुष समदर्शी हो जाता है। परमात्माका तत्त्वतः ज्ञान और परमात्मामें प्रवेश एक ही बात है। इसी सत्यके साक्षात्कारके लिये गीतामें विविध साधनोंका निरूपण किया गया है।

९–यदि निष्पक्ष होकर गीताके साधनपक्षका निरीक्षण किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि काम, क्रोध और लोभसे विमुक्त होकर ही श्रेयके आचरण किये जा सकते हैं। दोष-दुर्गुण नरकके द्वार, आत्मज्ञानके विरोधी एवं परिपन्थी हैं। भगवान्‌की भक्ति साधनोंमें सबसे सुगम है। यह ज्ञान, योग, स्थितप्रज्ञता, गुणातीतता—सभीमें सहायक है। यह साधनकालमें दोष-दुर्गुणोंका दूरीकरण और सद्‌गुणोंका आधान करती है। पदार्थ-शोधनमें तीव्रता उत्पन्न करती है। अविद्या-निरासके लिये विद्याको उद्दीप्त करती है। जब विद्या-अविद्याको निवृत्त करके स्वयं निवृत्त हो जाती है, तब तत्त्वज्ञ महापुरुषके जीवनमें जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख बनकर ऐक्यरतिके रूपमें यही स्वस्वरूपा भक्ति प्रकाशमान रहती है। क्यों न हो, जब भगवान् और आत्मा शब्दोंके अर्थ अलग-अलग होते हैं तब भगवद्रति और आत्मरति अलग-अलग होती है; परंतु जब दोनोंके ऐक्यका बोध होकर तदितरका बोध हो जाता है तब स्वभावसिद्ध ऐक्यरतिके रूपमें भक्ति महारानी अपना स्वरूप प्रकाश करती है—'स सर्वविद् भजति माम्।'

१०–यद्यपि ब्रह्मबोध अविद्यानिवृत्तिके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं करता तथापि ब्रह्मज्ञानीके जीवनमें अविद्यानिवृत्तिके कुछ परिणाम स्पष्टरूपसे दृष्टिगोचर होते हैं।

जीवनकालिक विविध और विषम परिस्थितियोंमें एक ऐसी स्थिर प्रज्ञाका उदय हो जाता है जिससे व्यवहारमें स्थित महापुरुष स्थितप्रज्ञ हो जाता है और एक स्थिर आधार मिल जानेके कारण मनकी चञ्चलता और विचलता समाप्त हो जाती है; क्योंकि प्रज्ञाके स्थिर होनेपर कुछ बातें अपने-आप ही जीवनमें उतरती हैं—(क) अपने हृदयमें अपने आत्माकी विद्यमानतासे ही संतुष्ट रहना। इसका स्वाभाविक फल यह होता है कि कामनाएँ स्वयं शान्त हो जाती हैं।

(ख) इन्द्रियोंको प्रिय लगनेवाले विषयोंमें आसक्ति नहीं रहती। इसलिये उनके वियोगमें उद्वेग, संयोगमें स्पृहा, भोगमें राग, नाशका भय और नाशकपर क्रोध नहीं होता।

(ग) स्वतःसिद्ध साध्यकी प्राप्ति हो जानेके कारण साधनपक्षमें दुराग्रह भी नहीं रहता। फलस्वरूप साधनहीन और साधन-विरोधीसे भी द्वेष नहीं होता। साथ ही अपनी रुचिके अनुकूल साधन करनेवालोंके प्रति अभिनन्दन और पक्षपात भी नहीं रहता। सर्वात्मक ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान साधनके अभिनिवेशको शिथिल कर देता है।

(घ) ऐन्द्रियक भोगोंसे तृप्ति प्राप्त होनेकी दुराशा छूट जानेके कारण स्वयं ही अन्तर्मुखता सेवामें उपस्थित हो जाती है। विषयानन्द ऐन्द्रियक है। ब्रह्मानन्द मन और इन्द्रियोंकी शान्ति है। विषयानन्दपर बार-बार कर्मका आवरण आता है। शान्ति निरावरण, स्थिर और अपने अधिष्ठान ब्रह्मसे अभिन्न है। इसलिये शान्ति ही नित्य तृप्ति है। फिर कामपूर्तिमूलक रति, लोभपूर्तिमूलक तुष्टि और भोगपूर्तिमूलक तृप्तिकी अपेक्षा न रहकर आत्मरति, आत्मतुष्टि और आत्मतृप्ति सदा विराजमान रहने लगती है।

(ङ) अभिमान और ममत्वकी निवृत्ति हो जानेके कारण जीवनमें स्वाभाविक ही त्यागकी प्रतिष्ठा हो जाती है। त्यागमें विराग और विरागके अन्तरङ्गमें तत्त्वज्ञान। इसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्मबोधके उत्तरकालीन स्वाभाविक त्यागमें स्वयं ही रस-रागका निरोध और आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है।

(च) मन अपने आश्रयस्वरूप परमात्मामें नकिंचित् हो जाता है। स्फुरित होनेपर आत्मासे पृथक् उसकी स्थिति, गति नहीं होती। इसलिये प्रमाथी इन्द्रियोंके इन्द्रजालसे वह मुक्त हो जाता है और सबका संयम करके युक्त और आत्मपरायण रहता है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है—इन छः विशेषताओंके आनेपर बुद्धिके परिवर्तन और विचलनका कोई कारण नहीं रह जाता और प्रज्ञाके स्थिर होनेपर इनका आ जाना सर्वथा स्वाभाविक है।

११–तत्त्वज्ञानके बिना सच्ची स्थितप्रज्ञता नहीं आ सकती। तत्त्वज्ञान अन्तःकरणकी शुद्धिके बिना नहीं हो सकता। कर्मयोगके बिना अन्तःकरणकी शुद्धि नहीं हो सकती। ब्रह्मसत्यके साक्षात्कारमें कर्मयोगका असाधारण महत्त्व है। अपने अन्तःकरणकी शुद्धि और ईश्वरप्रीतिके लिये किया जानेवाला पुरुषका प्रत्येक विहित प्रयत्न कर्मयोग है। शारीरिक प्रयत्न धर्म है। मानसिक प्रयत्न उपासना है। बौद्धिक प्रयत्न सांख्य है। ये सब पुरुष-प्रयत्नसाध्य होनेके कारण कर्मयोगकी ही बहिरङ्ग-अन्तरङ्ग शाखाएँ हैं। इनके द्वारा चित्तशुद्धि होकर महावाक्यके द्वारा भूमासत्य-विषयक चरमा वृत्ति होती है, वही अज्ञानका नाश करती है।

सम्पूर्ण आध्यात्मिक उन्नतिका मूल कर्मयोग है। भगवद्वाणीकी स्पष्ट उद्घोषणा है कि कर्मयोग ही नैष्कर्म्यका एकमात्र उपाय है। केवल कर्मसंन्यास सिद्धिका उपाय नहीं है। सम्पूर्ण कर्मोंका परित्याग होना सम्भव भी नहीं है। वे शरीरधारीके लिये प्रकृतिसिद्ध हैं। निष्काम एवं आसक्ति-रहित कर्मयोग सकाम कर्मत्यागसे विशिष्ट है। अकर्मण्यता और कर्मठताके द्वन्द्वमें कर्मानुष्ठान ही श्रेष्ठ है। कर्मके बिना तो जीवन-निर्वाह भी नहीं हो सकता। ऐसी-ऐसी अनेक युक्तियोंके द्वारा समर्थित भगवद्वाणीकी कर्मयोग-प्रेरणा सर्वथा उपादेय है, परमात्माकी प्राप्तिके निभृत अन्तर्देशमें प्रवेश प्राप्त करनेके लिये यही द्वार है।

१२–प्रज्ञाकी स्थिरतामें प्रतिबन्धक विषयचिन्तन, विषयासक्ति, काम, क्रोध, सम्मोह, स्मृतिविभ्रम और बुद्धि-नाशसे बचकर, क्योंकि ये प्रणाशके कारण हैं, अपने मनको गुरु और शास्त्रका आज्ञाकारी बनाना चाहिये। इसीको गीतामें विधेयात्मा कहते हैं। अध्रुव प्रपञ्चमें अविनाशी ध्रुवकी इच्छा करनेवाला बालक है, अकृतात्मा है। वह मृत्युके द्वारा फैलाये पाशमें स्वयं फँस जाता है। विधेयात्मा पुरुष ही इस पाशको काटता है। इसकी युक्ति है, राग-द्वेषरहित होकर व्यवहार करना और केवल जीवननिर्वाहके लिये भोग करना। इन्द्रियोंका अपने वशमें होना परमावश्यक है। इसीसे प्रसादकी उपलब्धि होती है। अन्तःकरणका निर्विकार और निर्मल होना ही प्रसाद है। प्रसाद ही प्रज्ञा-की स्थिरताका जनक है। मन इन्द्रियोंके पीछे न चले, प्रज्ञाके पीछे चले। हम संसारके भोगोंका पीछा न करें, भोग स्वयं हमारी ओर आयें और हमारी पूर्णतामें समा जायँ। निष्कामतामें ही शान्ति मिलती है। जब यह शान्ति तत्त्वज्ञानपूर्वक होती है, तब इसे 'ब्राह्मी स्थिति' कहते हैं। वस्तुतः यह एक व्यावहारिक शान्ति है और भगवद्वाणीकी प्रेरणाके अनुसार जीवन निर्माण करनेपर यह इसी जीवनमें प्राप्त होती है।

१३–यह बात पहले कही जा चुकी है कि जीवन-निर्माणकी प्रत्येक दिशामें भगवद्भक्ति असाधारण उपकारक है, मधुर है, रसीली है। पंद्रहवें अध्यायमें भगवद्भक्तिके लिये अपेक्षित सम्पूर्ण साधनसामग्रियोंका निरूपण है। जीवकी कर्ममूलक गतियाँ वैदिक धर्मानुष्ठानसे ही लौकिक जीवनमें सुख-शान्तिकी छाया, दृढ़ वैराग्यकी आवश्यकता, निर्मान मोह आदि साधन, भजनीय ईश्वरका स्वरूप, जीवका स्वरूप, भगवद्भक्तिका स्वरूप—ये सभी बातें कही गयी हैं, यह मनुष्य-जीवनको पूर्ण बनानेके लिये पर्याप्त हैं। सच्चा ज्ञान और कृतकृत्यताकी प्राप्तिके लिये पंद्रहवें अध्याय-जितनी सामग्री एकत्र मिलना दुर्लभ है।*

---

* 'कल्याण' के पाठक श्रद्धेय स्वामीजी श्रीअखण्डानन्दजी महाराजसे सुपरिचित हैं। आप बहुत बड़े दार्शनिक विद्वान्, लेखक और वक्ता महात्मा हैं। आपके द्वारा लिखे ग्रन्थरत्न तथा प्रवचनोंके संग्रह आध्यात्मिक जगत्की अमूल्य निधि हैं। आपके माण्डूक्यप्रवचन, भक्तिरहस्य, श्रीमद्भागवतरहस्य, सत्सङ्गसाधन और फल, सुगम भक्तिमार्ग, भगवान्के पाँच अवतार, ईशावास्य-प्रवचन, आनन्दवाणी आदि लगभग १६, १७ बहुत ही उपादेय तथा कल्याणप्रद ग्रन्थरत्न प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें वेदान्त, भक्ति, सदाचार, निष्कामकर्मयोग आदिका विशद विवेचन है। उपर्युक्त लेख आपके 'पुरुषोत्तमयोग' से लिया गया है। जिन सज्जनोंको आपके ग्रन्थोंसे लाभ उठाना हो वे 'सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट' "विपुल", २५५-ए। १६ रिज रोड, मालाबार हिल, बम्बई ६ से पत्रव्यवहार करें।

—सम्पादक

मनन-माला

(लेखक—ब्र० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास)

[गताङ्क पृष्ठ ९६५ से आगे]

२२—सब शरीरोंमें आत्मा है, यह जानकर जिन प्राणियोंसे भी सम्पर्क हो, उनका भलीभाँति दान-मानसे सम्मान करें, इस प्रकार आत्मोपासना करें। आत्मा कहें या परमात्मा, चेतन वस्तु एक और अखण्ड है तथा वह प्राणीमात्रके भीतर और बाहर व्याप्त है। ऐसा जानकर प्राणीमात्रको भगवान्‌की मूर्ति समझकर शास्त्रमें कहे अनुसार यथायोग्य सबकी भलीभाँति पूजा करे। जैसे गायकी पूजा चन्दन-पुष्पसे नहीं होती, बल्कि घास देकर उसकी पूजा की जाती है। इसी प्रकार भूखेकी पूजा उसको भोजन देनेसे और प्यासेकी पूजा जल पिलानेसे होती है। रोगीकी पूजा उसकी चिकित्सा तथा सेवा करके होती है। आश्रयहीनकी पूजा उसे आश्रय देकर की जाती है। देवमूर्तिकी सेवा शास्त्र-विधिके अनुसार श्रद्धापूर्वक पूजा करनेसे होती है। इस साधनसे थोड़े समयमें ही आत्मदर्शन होता है। परंतु जो कुछ करे, पूर्ण निष्काम भावसे करे।

२३—चित्त संकल्प-विकल्प किया ही करता है। उसको शान्त करनेके लिये भगवान्‌की अपने मनके अनुकूल एक सुन्दर मूर्ति रखकर उसके सामने एकटक देखा करे। शरीरको बिना हिलाये-डुलाये, आँखकी पलक बिना गिराये, जबतक बने तबतक उस मूर्तिका दर्शन करता रहे। आँखें थक जायँ तो थोड़ी देर उन्हें आराम देकर फिर आँखें खोलकर उस मूर्तिके अङ्ग-प्रत्यङ्गका दर्शन करे। इस अभ्यास-से चित्त शान्त होगा। श्वास-प्रश्वासकी गति मन्द होगी तथा मन निर्विकार होगा। ज्यों-ज्यों चित्त शान्त होगा, वासनाएँ मरती जायँगी और आत्मसाक्षात्कार समीप होता जायगा। यदि भगवान्‌के सगुण स्वरूपके दर्शनकी इच्छा होगी तो भगवान् सगुणरूपमें प्रकट होंगे।

२४—चित्तको शान्त करनेका दूसरा मार्ग यह है कि एक बड़ा दर्पण लेकर विक्षेपरहित स्थलमें एकान्तमें बैठे और दर्पणमें अपने प्रतिबिम्बको एकटक देखे। आँखोंमें जलन हो या पानी आने लगे तो भी बिना घबराये देखता रहे। ऐसा करते हुए जब आँखें थक जायँ तब थोड़ी देरतक आँखोंको आराम देकर फिर ताकना शुरू कर दे। इस प्रकार रोज थोड़ा-थोड़ा अभ्यास बढ़ावे और मनमें कोई संकल्प उठे तो उसका त्याग करे तथा मनको निर्विचार करता जाय। इन सब अभ्यासोंके करनेमें उतावली न करे। धीरे-धीरे शान्तिसे और धीरजसे आगे बढ़े। एक महीनेतक प्रतिदिन पंद्रह मिनट बैठे और दूसरे महीनेमें धीरे-धीरे बढ़ाकर आधा घंटा कर दे।

२५—एक सुगम उपाय यह है कि बिना हिले-डुले, शान्त होकर एकान्तमें बैठकर आँखें बंद कर ले और मुँदी आँखोंसे जो अँधेरा दीखे, उसको देखता रहे। मुँदी हुई आँखोंसे अँधेरा तो दीखता ही है, उस अँधेरेको देखते हुए मन कोई संकल्प न करे, यह ध्यानमें रक्खे। संकल्प करने लगे तो उसे रोके। यह अभ्यास भी धीरे-धीरे बढ़ावे। इस अभ्यासके बढ़ाते समय अनेक दृश्य दीखेंगे, उनसे हर्षित न हो तथा घबराये नहीं। जो दीखे, उसे देखता रहे और मनको संकल्परहित बनाये रक्खे। जो दीखे उसे परमात्मा या आत्मा न समझे। दीपक-जैसा जान पड़े, अथवा चन्द्रमा, तारा, बिजली आदि-जैसे जान पड़ें तो उन सब दृश्योंको चित्तकी वृत्ति समझे। मनको बिना किसी विचारके शान्त रखना जरूरी है।

२६—संतोंके द्वारा प्रशंसित एक नादानुसंधानकी प्रक्रिया है। एकान्तमें लम्बा होकर सो जाय। दरी या तोशकके ऊपर सोवे। पश्चात् दोनों कानोंमें दो अङ्गुलियाँ डालकर कानोंके छिद्रको बंद कर दे। ऐसा करनेसे कानोंमें आवाज सुन पड़ेगी। उस आवाजको सुने और इस अभ्यासको धीरे-धीरे बढ़ावे। यह अभ्यास अनुभवी पुरुषके पास सीखकर उसके समीपमें रहकर करे। इससे पक्षियोंकी चहचहाटसे लेकर घंटी, घड़ियाल, शङ्खतककी आवाज सुनायी देती है।

२७—देश, काल, वस्तु, व्यक्ति और क्रिया—इन पाँचों-का असर चित्तपर होता है। ये सात्त्विक, राजस या तामस—जिस प्रकारके होते हैं, उनके सङ्गमें आनेवाला चित्त भी उसी प्रकारका बन जाता है। अतएव इन पाँचोंको सात्त्विक रूपमें सेवन करे और श्रेयकी इच्छा करते हुए राजस-तामसका त्याग करे।

२८—जैसा मन होता है, वैसा ही मनुष्यका स्वरूप होता है और जैसा सङ्ग होता है वैसा मन बनता है। सबके सङ्गकी अपेक्षा व्यक्तिका सङ्ग बलवत्तर है। जैसे व्यक्तिका सङ्ग होगा, वैसा ही मनुष्य बन जायगा। इसमें जिस व्यक्तिमें पूज्य बुद्धि होती है और जिसका वचन प्रमाण जान पड़ता है, उस व्यक्तिके सङ्गका शीघ्र असर पड़ता है। अतएव श्रेयकी इच्छा रखनेवालेको चाहिये वह सात्त्विक गुणयुक्त, सदाचारी, ईश्वर-भक्त, शान्त, वैराग्यवान्, नित्य प्रसन्न, व्यक्तिकी सेवा करे। भोगी मनुष्यका सङ्ग छोड़ दे। सङ्गसे कामना जाग्रत् होती है। जैसा सङ्ग होता है, वैसी इच्छा होती है। अतएव मुमुक्षु पुरुष भोग और भोगीका सङ्ग सर्वथा त्याग दे। इन्द्रियोंके द्वारा मन अनुभव करता है और अनुभवमें राग होनेसे उसकी इच्छा जाग्रत् होती है। अतएव मोक्षकी इच्छा रखनेवाला विषय-कामना उत्पन्न न करे तथा वैषयिक चित्र, नाटक, सिनेमा तथा दृश्य आदि न देखे और वैसे व्याख्यान, आख्यान तथा संगीत भी न सुने। जिससे परमात्माके प्रति प्रीति हो, उसकी भक्ति बढ़े, वैसे दृश्योंको देखे। वैसी वाणी सुननेको मिले, इसलिये संतोंकी सेवा करे। परमात्माकी महिमाके द्योतक निर्दोष प्राकृतिक दृश्योंको देखे।

२९—जैसे आज स्नान करनेके बाद फिर कल स्नान करना पड़ता है; क्योंकि शरीर विकारी होनेके कारण मलिन हो जाता है। इसी प्रकार आज चित्त शान्त रखनेके बाद कल फिर उसको शान्त करनेका अभ्यास करना पड़ता है। चित्तमें मलिनता आती ही है, अतएव चित्त-शुद्धिके लिये नित्य निरन्तर प्रयत्न करना जरूरी है। निर्विचार अवस्थामें बैठनेका अभ्यास, परमात्माकी सगुण उपासना और सत्सङ्ग—ये चित्तशुद्धिके सुन्दर उपाय हैं, इनका नित्य सेवन करे।

३०—परमात्माके किसी भी एक छोटे-से नामको गुरुके द्वारा ग्रहण कर ले। जैसे राम, कृष्ण, हरि, ॐ आदि। फिर उस नामकी रट बोलकर या मन-ही-मन निरन्तर करता रहे। मनको बेकार न रहने दे। हम चाहे जहाँ रहें, मनको सदा नाम-स्मरणमें लगाये रक्खें। जैसे रोजाना मजदूरीपर किसी आदमीको काममें लगाया जाता है और जब वह बेकार होता है तो तत्काल काममें लगानेवाला उसको तुरंत काम देता है, बेकार नहीं बैठने देता। उसी प्रकार मनको, जैसे ही वह बेकार हो तुरंत हरिस्मरणमें लगा दे। यह अभ्यास बहुत ही अच्छा है।

३१—मैं देह हूँ, ऐसा मानकर हम सारा व्यवहार करते हैं। इसकी जगह 'मैं आत्मा हूँ'—ऐसा मानकर सारा व्यवहार करे। पुराने जमानेमें संतजन शिष्यको यह बात दृढ़ करा देते थे कि 'तू देह, इन्द्रिय, मन या बुद्धि नहीं है, बल्कि तू सबसे परे असङ्ग चेतन आत्मा है।' इसका भलीभाँति अभ्यास होता था और तदनुसार अभ्यास करते हुए आत्मज्ञान दृढ़ होनेपर मनुष्य सारा व्यवहार जीवन्मुक्त दशामें रहकर करता था। इसी प्रकार सबको चाहिये। देह-स्वरूपके स्थानमें आत्मस्वरूप होकर शरीरसे सारी क्रिया करे और मनसे शान्त आत्मस्वरूपमें रहे। इससे श्रेयकी इच्छा रखनेवाले दिनमें अनेक बार (२) नम्बरमें उक्त साखीको बोला करें।

३२—जो कुछ यह दृश्य जगत् दिखलायी देता है, इस सबके बाहर और भीतर आत्मा है। प्राणीमात्रके शरीरमें आत्मा है। देव, दानव, मनुष्य, पशु-पक्षी सबमें आत्मा है। इसलिये सबको आत्मस्वरूप जानकर उनके साथ आत्मवत् व्यवहार करे। आत्मा ही अनेक रूप होकर सारे ब्रह्माण्डमें व्याप्त हो रहा है। आत्माके बिना कोई स्थान नहीं है। सारांश यह है कि आत्मा ही जगत्‌रूपमें भासित हो रहा है। इस बातका बुद्धिद्वारा भलीभाँति विचार करे।

३३—जगत्‌में जो कुछ दिखलायी पड़ता है, सुनायी पड़ता है या अनुभवमें आता है, वह सब पञ्चमहाभूतोंसे बना है, यह बात ठीक है न? पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पञ्चमहाभूत कहलाते हैं, इन पञ्चमहाभूतोंके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इहलोक या परलोकमें इन पञ्चमहाभूतोंसे न बना हुआ कोई पदार्थ नहीं है। पञ्चमहाभूतोंमें अन्तिम पृथ्वी-तत्त्वको लें, तो शास्त्र कहते हैं कि जल, तेज, वायु और आकाश—इन चार तत्त्वोंसे पृथ्वी तत्त्व बना है। इन चार तत्त्वोंसे पृथक् वस्तु पृथ्वी नहीं है। इसलिये वास्तविक चार तत्त्व हैं। इनमें जलतत्त्वको कहते हैं कि तेज, वायु और आकाशका परिणाम है। इन तीनोंसे पृथक् जल नामका कोई तत्त्व नहीं है। रसायन शास्त्र भी कहता है कि हाइड्रोजन और आक्सीजनका मिश्रण जल है। अब रहे तीन तत्त्व—तेज, वायु और आकाश। इनमें कहते हैं कि तेजतत्त्व वायु और आकाशका परिणाम है। वायु (गैस) जलता है, इसका तो हम अनुभव भी करते हैं। अतएव वायु और आकाशके परिणामके सिवा कोई

पृथक् तेज-तत्त्व नहीं है । अब वायु और आकाशमें आकाशसे वायु उत्पन्न होता है । अतएव वायु आकाशका परिणाम है और आकाश अमूर्त्त तत्त्व है तथा वह आत्मासे उत्पन्न होता है । अर्थात् मूल आत्मासे आकाश पहले उत्पन्न हुआ और इस क्रमसे सृष्टि हुई । अतएव सारा जगत् पञ्चतत्त्वरूप है और पाँच तत्त्व आत्मासे उत्पन्न हैं । आत्मासे पाँचों तत्त्वोंके उत्पन्न होनेके कारण आत्माके सिवा दूसरा कोई नहीं है । इस कारण आत्मा ही पाँच तत्त्वके रूपमें तथा उस आधारपर जगत्के रूपमें अपनी मायाशक्तिसे व्यक्त हो रहा है । आत्मा ही जगत्रूपमें आभासित हो रहा है । जैसे जल और बुद्बुद पृथक् वस्तु नहीं हैं, बल्कि जल ही वायुके कारण बुद्बुदके रूपमें भासित होता है । इसी प्रकार आत्मा ही अपनी मायाशक्तिसे जगत्रूपमें भासमान है; क्योंकि सृष्टिके आदिमें आत्माके सिवा और कोई वस्तु न थी । आत्मा कहें या परमात्मा—वस्तु एक ही है, जो अखण्ड, अजर, अमर, अविकारी और अविनाशी है । प्राणीमात्रके भीतर और बाहर व्याप्त है । वह आत्मा मैं हूँ, इस प्रकारका चिन्तन करना नितान्त सत्य है । यह सहज ही गलेसे नीचे नहीं उतरता, परंतु आज या लाखों वर्ष आगे, यही केवल सत्य है—यह समझे बिना छुटकारा नहीं है ।

वैष्णवश्रेष्ठ कौन है ?

जड-चेतन सबमें जो सदा देखता एकमात्र भगवान ।
सबके सेवा-हितमें जो कर देता अपना सब बलिदान ॥
निज सुख-दुखमें सदा देखता जो प्रभुका कल्याण-विधान ।
क्षमावान, पर-दुःख-दुखी जो पर-कल्याण-निरत मतिमान् ॥
जिसके इन्द्रिय-प्राण, बुद्धि-मन-देह सभी प्रभु-सेवा लीन ।
रहते सदा, त्याग अग-जगका सारा ही सम्बन्ध मलीन ॥
सदाचार-रत रहता, पर करता न कभी किञ्चित् अभिमान ।
जन्म-कर्म-वर्णाश्रम-कुलमें रखता नहीं राग विद्वान् ॥
रागद्वेषरहित प्रभु-सेवाहित करता विधिवत् व्यवहार ।
पर न कहीं भी, कुछ भी करता अहंकार जो किसी प्रकार ॥
एकमात्र प्रभुमें ही रहती जिसकी सब ममता-आसक्ति ।
कर्ममात्र होते प्रभु-पूजा, प्रभुमें ही होती शुचि-भक्ति ॥
नहीं विमोहित कर पाते जिसको भुवनोंके दुर्लभ भोग ।
नहीं त्याग करता, कैसे भी, वह शुचि प्रभु-स्मृतिका संयोग ॥
प्रभुके शुचितम मधुर मनोहर लीला-नामोंमें अनुरक्त ।
सदा-सर्वदा रहता, होकर सभी वासनाओंसे मुक्त ॥
दैवी-सम्पद्के गुण जिसकी सेवा कर नित होते धन्य ।
भुक्ति-मुक्तिका त्यागी, अति बड़भागी प्रभुका भक्त अनन्य ॥
प्राणि-पदार्थ-परिस्थितिमें सम, नित्य-निरन्तर द्वन्द्वातीत ।
निकल रहा जिसके अणु-अणुसे नित्य मधुर प्रभुका सङ्गीत ॥
इस प्रकार जो दिव्य गुणों-भावोंसे युक्त नित्य रमणीय ।
वही श्रेष्ठ प्रभुरत वैष्णव है, सेवनीय अति आदरणीय ॥

मनुष्यके भीतरसे ईश्वरकी झलकियाँ !

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

पुरुष एवेदं सर्वम्। (ऋग्वेद १०।९०।२)

अर्थात् यह सम्पूर्ण विश्व परमात्माका ही रूप है। संसारको परमात्माका प्रत्यक्ष स्वरूप मानकर इसकी सेवा करनी चाहिये।

ईश्वर मनुष्यके मनमें विद्यमान है और अनेक बार सत्प्रवृत्तियोंके रूपमें वह चमका करता है। ईश्वरने मानव-प्राणीके निर्माणमें जो असाधारण श्रम किया है, उसकी सार्थकता तभी है, जब वह दिव्य प्रयोजनों और परोपकारमें संलग्न रहे, जिनके लिये उसका सृजन किया गया है। इस संसारको सुरम्य और सुव्यवस्थित बनानेमें निराकार परमेश्वरको एक साकार आकृतिकी जरूरत थी, जो मनुष्यके रूपमें पूर्ण होती है।

समय-समयपर हमारे समाजमें, दैनिक नित्यप्रतिके जीवनमें ही ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनसे प्रत्यक्ष होता है कि ईश्वर हमारे अंदर मौजूद है और उच्च कार्य कराता है। यहाँ ऐसे ही कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

रोगीको बचानेके लिये प्राणदान

गोरखपुरमें उत्तर-पूर्वी रेलवेके सेन्ट्रल अस्पतालके सर्जन डा० सुधीरगोपाल झिंगरनने हालमें ही एक रोगीकी जान बचानेके लिये अपने प्राणोंकी आहुति दे दी। बात यों हुई कि उस रोगीका ऑपरेशन किया गया था। रोगी पहलेसे ही दुर्बल था और उसमें रक्तकी कमी थी। उसके रक्तका मिलान किया गया, अनेक व्यक्तियोंके रक्तकी परीक्षा करनेपर ज्ञात हुआ कि कोई भी उसके रक्तसे मिलान नहीं खाता है। संयोगसे स्वयं सर्जन सुधीरगोपालने अपने रक्तका परीक्षण कराया, तो वह रोगीके रक्तसे मिल गया। डाक्टर साहबका ही रक्त चढ़ाकर उस रोगीको बचाया जा सकता था; दूसरा कोई मार्ग न था। अब क्या किया जाय ?

डाक्टर साहब विचार करने लगे, 'हमें अपने भौतिक स्वार्थोंकी संकीर्णतासे ऊपर उठनेके लिये यह सोचना ही होगा कि हमें मनुष्यकी योनि आध्यात्मिक आदर्शों, परोपकार, सेवा और ऊँचे आदर्शोंके लिये मिली है। यदि विश्व-हितके लिये हम कुछ नहीं करते, तो हमारा मानव-जीवन बेकार है। हमें शरीर-निर्वाह तथा परिवार-पालनके अलावा ईश्वरके व्यक्त एवं विराट् स्वरूप विश्व-हितके लिये भी कुछ करना चाहिये।'

यह सोचकर डाक्टर सुधीरगोपाल रोगीको रक्तदान देनेके लिये तैयार हो गये। एक शीशी रक्तके बाद दूसरी शीशी रक्तकी और जरूरत पड़ गयी। डाक्टर साहब पुनः रक्त निकलवा रहे थे कि कुछ ऐसी प्रतिक्रिया हो गयी कि उसी दिन रात्रिको अनेक उपचार करनेके बावजूद भी उनका देहान्त हो गया। ईश्वरका श्रम सार्थक हुआ। वह दैवी ज्योति बुझ गयी, पर शत-शत आत्माओंको मनुष्य-जन्मकी जिम्मेदारी सिखा गयी।

वृद्धाका नेत्र-दान

इलाहाबादमें एक ७० वर्षीय बंगाली वृद्धाकी आँखें दो अन्धोंको सफलतापूर्वक लगा दी गयी हैं। मरनेसे पूर्व वृद्धाने अपनी दोनों आँखें अस्पतालको दानस्वरूप देनेकी वसीयत लिखी थी। उसने लिखाया था, 'मैं चाहती हूँ कि मेरे शरीरका कोई भी हिस्सा यदि परोपकारमें दूसरेके काम आ सके, तो मेरा जीवन सफल है। ईश्वरने आदमीको जो असीम प्रतिभा, दिव्य ज्ञान, अन्तरात्मा दी है, उसके पीछे यही प्रयोजन है कि वह आखिरी दमतक परोपकारमें लगा रहे। आप मेरी ये आँखें सुरक्षित रक्खें और किसी जरूरतमन्द युवक-युवतीके लगा दें और ईश्वरका श्रम सार्थक करें।'

अस्पतालके डाक्टरने एक आँख एक दसवर्षीया अन्धी लड़की एवं दूसरी एक २२ वर्षीय नवयुवकके लगायी है। दोनोंको दीखने लगा है।

इसी प्रकारका एक उदाहरण और है। बम्बई नगरकी एक छः वर्षीया कुमारी जोत्स्ना बेन पटेलने तीन व्यक्तियोंको मरणोपरान्त नेत्र दान किये। इस लड़कीकी मृत्यु ७ दिसम्बर १९६५ को शहरके अस्पतालमें हुई थी। लड़कीके माता-पिताने शीघ्र ही सरकारी नेत्र-बैंकको उसके नेत्र दानमें दे दिये। इसके फलस्वरूप एक अन्धे

लड़केकी पुतलियाँ बदल दी गयीं तथा एक अन्य व्यक्तिकी विटियस ट्रांस प्लाटेशनके लिये शल्यक्रिया की गयी ।

नागपुरका एक समाचार इस प्रकार है—

स्थानीय मेडिकल कालेजमें एक ६० वर्षीय वृद्धद्वारा दानमें दी गयी आँखें एक ३० वर्षीया युवतीकी आँखोंमें लगा दी गयीं । इस युवतीकी आँखें ५ वर्षकी अवस्थामें ही चेचककी बीमारीके कारण खराब हो गयी थीं ।

अभावग्रस्त जीवनमें अनुकरणीय आदर्श

अभावग्रस्त कठिनाइयोंमें फँसे हुए, अनेक उत्तर-दायित्वोंके बोझसे दबे हुए व्यक्तियोंमेंसे भी ईश्वर झलका है ।

मुजफ्फरनगरके डी० ए० वी० कालेजके अध्यापकों तथा कर्मचारियोंने अपने एक दिवंगत अध्यापकके निःसहाय परिवारकी सहायताके लिये जिस अनुपम त्यागका आदर्श प्रस्तुत किया है, वह निश्चय ही सबके लिये अनुकरणीय है ।

कालेजके अर्थशास्त्रविभागके अध्यक्ष श्रीसीतारामकी गत २७ जुलाई १९६५ को मृत्यु हो गयी । श्रीसीतारामकी विधवा बहू, दो पुत्र और चार पुत्रियोंके लिये कोई सहारा नहीं रहा । छोटे बच्चे, कमानेवाला मृत्युके कराल ग्रासमें समा गया । दो पुत्रियोंकी शादी तो तुरंत ही होनी चाहिये ।

ऐसी आर्थिक तंगी और वैवाहिक कठिनाईमें दिवंगत प्राध्यापककी विधवाको जो कठिनाई हो सकती है, उसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है । अध्यापकोंकी आर्थिक हालत कितनी गिरी हुई होती है, यह किसीसे छिपी नहीं है । उनकी कमाई हाथसे उदरतक ही सीमित रहती है । ऐसे विरले ही होते हैं, जो अपने पीछे कुछ धन छोड़ जाते हैं । फिर जिनका परिवार बड़ा हो, उनकी मुसीबतोंका तो अन्त ही नहीं ।

कॉलेजके कर्मचारियोंमेंसे ईश्वर चमका । उनकी अन्तरात्माने कहा, 'तुम्हें अपने स्वर्गीय साथीके परिवारकी हर प्रकार सहायता करनी चाहिये ।' सबने मुसीबतमें फँसे परिवारकी सहायताका फैसला किया ।

आप जानते हैं, वह फैसला क्या था ?

सबने निर्णय किया कि सब कर्मचारी, जिसमें चपरासी, फर्राश, भंगीतक शामिल हैं, तीन वर्षतक अपनी मँहगाईका भत्ता जमा करते रहेंगे । इस प्रकार जो धन एकत्रित होगा, उससे इस परिवारकी सेवा-सहायता, विवाह इत्यादि किये जायँगे ।

जिन कर्मचारियों और अध्यापकोंने यह व्रत लिया है, उन्हें स्वयं कितनी कठिनाई होगी, इसका अनुमान लगा सकना कठिन नहीं है; किंतु स्वयं कष्ट उठाकर जो दूसरोंकी कठिनाइयोंको आसान करनेकी कोशिश करते हैं, मानवता उन्हींको अपना आदर्श मानती है और उन्हींसे प्रेरणा लेती है ।

रिक्शाचालककी ईमानदारी

फरीदकोटका एक समाचार है । इक्कीस वर्षीय रिक्शा चलानेवाले रामचन्द्रने शनिवारको पूरा दिन उस मुसाफिरकी खोजमें लगा दिया, जो जल्दीमें भूलसे अपनी अटेची रिक्शेमें भूलकर कामपर तेजीसे निकल गया था । उसमें पैंतालीस हजारके जेवर आदि थे । वह चाहता तो यह सब धन हड़प कर सकता था, पर वह मनुष्य-जन्मकी नैतिक जिम्मेदारीको समझता था और उसे पूरा करनेमें ही सफलता मानता था । अन्तमें अटेचीको खोल खतपर लिखे एक पतेकी सहायतासे रिक्शाचालकने जेवरोंके मालिकका पता लगा लिया और अबोहर जाकर वह अटेची असली हालतमें सौंप दी । जेवरोंके मालिकने रिक्शाचालकको पाँच सौ रुपयेका पुरस्कार देना चाहा । पहले तो उसने लेनेसे इन्कार कर दिया । अधिक आग्रहके बाद उसने वह राशि लेकर जवाहरलाल नेहरू स्मारक कोषको दे दी ।

आदमीमें ईश्वर बैठा हुआ, सही रास्ता दिखाता रहता है । आन्तरिक अभिलाषा तीव्र हो और उसके लिये आवश्यकता, दृढ़ता एवं प्रयत्नशीलता विद्यमान रहे, तो परोपकारका रास्ता मिल ही जाता है ।

भूलका प्रायश्चित्त

कटककी एक घटना अखबारोंमें छपी है ।

यहाँके एक छात्रद्वारा अपनी भूलका अनोखे ढंगसे प्रायश्चित्त किये जानेकी एक घटना घटित हुई है । घटना इस प्रकार है—

शेखबाजारका ८ वीं कक्षाका एक छात्र शहरसे स्टेशनतक रिक्शासे आया । रिक्शा—भाड़ेके बारह आने

देनेके लिये उस छात्रने एक रुपयेका नोट रिक्शावालेको दिया, लेकिन रिक्शावालेके पास चार आने वापस देनेके लिये न होनेके कारण उसने वह नोट लौटा दिया। छात्रने उसे यह कहकर कि 'अभी रेजगारी लाता हूँ। कुछ देर ठहरो।'—वह स्टेशनके भीतर चला गया और बुकस्टालपर पत्र-पत्रिकाएँ पढ़नेमें इतना तल्लीन हो गया कि उसे याद ही न रहा कि रिक्शेवालेको मजदूरीके पैसे भी देने हैं।

करीब आध घंटे पश्चात् जैसे ही उसे याद आया, बुकस्टालसे रेजगारी लेकर वह भागा-भागा स्टेशनके बाहर आया, तो दुर्भाग्यसे रिक्शावाला न मिला। छात्रकी अन्तरात्माने उसे बुरी तरह विक्षुब्ध कर दिया। वह सोचने लगा, 'हाय! मुझसे कैसा पाप हो गया। मैंने एक गरीब मजदूरकी मजदूरी दबा ली। उस गरीबकी रोटी छीन ली। उफ्! वह भूखा होगा।' दुखी होकर छात्र उसे इधर-उधर ढूँढ़ने लगा। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते काफी रात व्यतीत हो गयी। फिर भी वह न मिला तो पासहीमें मोटर-स्टैंडके पास आकर सिसकियाँ भर-भरकर रोने लगा। लोगोंने जब उसके रोनेका कारण पूछा, तो उसने सारी बातें बता दीं और वह कहने लगा कि 'मेरी गलतीसे एक गरीब रिक्शेवालेकी बारह आनेकी मजदूरी मारी गयी। मैं उसका प्रायश्चित्त कर रहा हूँ।'

लोगोंके समझाने-बुझानेपर वह आँखोंमें अश्रु लिये एक अन्य रिक्शासे अपने घर चला गया, लेकिन जानेसे पूर्व वह बारह आने अपंग भिखारियोंको बाँट गया।

सच है आन्तरिक अभिलाषा तीव्र हो और उसके लिये दृढ़ता और प्रयत्नशीलता विद्यमान रहे, तो परोपकारका मार्ग मिल ही जाता है। कोई ऐसा तरीका निकल आता है, जिससे दूसरोंकी कुछ सहायता-सेवा हो सकती है।

परोपकारके लिये बलिदान

जबलपुर छिन्दवाड़ा जिलेके आनन्दराव नामक एक व्यक्तिको डूबते बालककी प्राणरक्षामें अपना बलिदान करनेके लिये मरणोत्तर राष्ट्रपति-पदक प्रदान किया गया है।

बताया जाता है कि छिन्दवाड़ा जिलेके बैरागढ़ गाँवमें लोहेके कमजोर ढक्कनसे ढके हुए अनाजके एक गहरे गड्ढेपर एक दस वर्षीय बालक खेल रहा था। वह ढक्कन उसका भार सहन न कर सकनेके कारण यकायक टूट गया और बालक उस गड्ढेमें गिर पड़ा। उस गड्ढेमें काफी ऊँचाईतक पानी भरा हुआ था। पास ही स्वर्गीय श्रीआनन्दराव खड़े थे। बालककी प्राणरक्षाके लिये उन्होंने अपनी जानकी परवा नहीं की और वे स्वयं उस गड्ढेमें कूद गये। यद्यपि वे अपने इस उद्देश्यमें सफल हुए, परंतु बाहर निकलनेके पहले ही उस गड्ढेकी जहरीली हवा और गैसके कारण दम घुटनेसे उनकी मृत्यु हो गयी। इस महान् और परोपकारी कार्यके लिये भारत-सरकारने सराहना की है और राष्ट्रपति-पदक प्रदान किया है।

इसी प्रकारका एक समाचार इस प्रकार है—

नयी दिल्ली। तीन स्त्रियोंको डूबनेसे बचाकर अपना जीवन बलिदान कर देनेवाले दिल्लीके १६ वर्षीय वीर बालक सुभासचन्द्रके पिता श्रीआर० आर० खुरानाको चीफ कमिश्नरने अपने निवास-स्थानपर आयोजित एक समारोहमें पुत्रका मरणोत्तर जीवनरक्षा-पदक (प्रथम श्रेणी) भेंट किया।

पूरी घटना इस तरह है। दरियागंजके कमर्शल हायर-सेकेंड्री स्कूलका विद्यार्थी सुभासचन्द्र ८ नवम्बर १९६२ को अपने तीन मित्रोंके साथ कुदसिया घाटके निकट घूम रहा था कि घाटकी ओरसे चिल्लानेकी आवाज आयी। ये तुरंत दौड़ते हुए घाटपर पहुँचे। उन्हें मालूम हुआ कि स्नान कर रहीं कुछ स्त्रियाँ भँवरमें फँस गयी हैं। सुभास तुरंत जूते उतारकर कपड़ोंसहित यमुना नदीमें कूद गया। तीनों डूबती स्त्रियोंको तो उसने बचा लिया, किंतु स्वयंको न बचा पाया और यमुनाकी गोदमें समा गया। परोपकारी बालककी जब यह कहानी उस समारोहमें सुनायी गयी, तो उसके पिताका भाल गर्वसे ऊँचा उठ गया।

मनुष्यके भीतर देवत्व है और वह अनेक बार इस प्रकार झलकता रहता है। परोपकारसे मनुष्यका देवत्व अधिकाधिक विकसित होगा। इस दृष्टिकोणको अपनाकर मनुष्य देवता बनता है, शान्ति पाता है, यशस्वी बनता है और लोक-परलोकमें सुख पाता है।

बिना कर्मचारीका डाकखाना

राजकोट। सौराष्ट्रके एक गाँवमें बिना व्यक्तिके डाकखानेका परीक्षण सफलतापूर्वक किया जा रहा है। जूनागढ़के उस गाँवमें एक बक्समें कार्ड और लिफाफे रक्खे हैं और जिस ग्रामीणको जरूरत पड़ती है, उसमेंसे कार्ड-लिफाफे निकालकर उतने ही पैसे उसमें डाल देता है। इस ईमानदारीके कारण

वह डाकखाना मजेमें चल रहा है। अभीतक एक पैसेका भी घाटा नहीं हुआ है। परमार्थवृत्तियोंको विकसित करनेसे मनुष्य जीते-जी देवत्वकी तरफ बढ़ता है और स्वर्ग-जैसा भव्य वातावरण उपस्थित करता है।

नियमोंके विरुद्ध मैं कुछ नहीं कर सकता

महात्मा सुकरातको प्राण-दण्ड हुआ। लोग उनकी विचारधाराको ठीक प्रकार समझ नहीं पाये थे। दुनियामें मूढ़मतिवाले भी काफी हैं। उनके कारण प्राणदण्डका आदेश पाये हुए कैदीके रूपमें सुकरात कारावासमें थे।

उनके परम शिष्य क्रीटोने उन्हें बचानेकी युक्ति सोची। वे उचित-अनुचित किसी भी तरह उन्हें बचा लेना चाहते थे। क्रीटो रिश्वत दे, जेलमें चुपकेसे घुस आये और सुकरातके सम्मुख हाथ जोड़कर बोले—

'आपकी प्राणरक्षाका सारा प्रबन्ध हो चुका है। देर न कीजिये और चुपचाप जेलसे भाग चलिये। बाहर आपको बचाकर सुरक्षित ले चलनेका सारा इन्तजाम पूर्ण है। किसीको पता भी न चलेगा कि आप कब और कैसे जेलसे गायब हो गये? आपको किसी दूसरे देशमें पहुँचा दिया जायगा। मेरी जीवनभरकी जो कुछ भी कमाई है, सब आपको भेंट है। बस, आपका जीवन चाहिये।'

सुकरातके सामने जीवन-रक्षाका एक स्वर्णिम अवसर था। कौन ऐसा मानव है जिसे प्राण प्यारे नहीं होते! उचित-अनुचित हर तरीकेसे आदमी प्राणरक्षा चाहता है।

पर सुकरातने उस सुझावपर गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, 'मैं ऐसे अनुचित प्रस्तावको स्वीकार नहीं कर सकता। जिस देशकी मिट्टीमें मैं पैदा हुआ हूँ, जहाँ मेरे माता-पिता रहे हैं, जहाँकी हवामें साँस लेकर और जहाँके पानीमें मैं पला हूँ, उस देशके नियमोंके विरुद्ध कार्य करना मैं परमात्माके प्रति धोखा मानता हूँ।'

वास्तवमें आध्यात्मिक उत्कर्षका आधार कोई पूजा-पद्धति, कर्मकाण्ड या अभ्यास साधन नहीं, वरं दैवी गुणोंका व्यवहार, ईमानदारी और अनुशासनप्रियता ही हो सकती है। ईश्वर-प्राप्ति एवं स्वर्ग, मुक्ति, आत्मशान्ति-जैसी सिद्धियोंको प्राप्त करनेकी अनिवार्य शर्तें संयम, सदाचार एवं उदारता ही होती हैं। उन्हें पूरी किये बिना कोई व्यक्ति आत्म-कल्याणका अधिकारी नहीं बन सकता।

अपना शव भी दान

हैदराबादमें गुडरके एक एडवोकेट श्री एइ० वी० नरसिंहराव अभीतक रोगियोंको बचानेके लिये चालीस बार रक्तदान दे चुके हैं, लेकिन त्याग और बलिदानकी यह परम्परा अभी बंद नहीं हुई है। वे मानवताकी सेवामें ही ईश्वरकी सेवा मानते हैं। मनुष्य-जीवनको सार्थक करना चाहते हैं। अतः अब उन्होंने अपनी वसीयतमें अपना शव ओस्मानिया जनरल अस्पतालके सुपरिन्टेन्डेन्टके नाम कर दिया है। उन्होंने यह भी कहा है कि मेरी मृत्युके बाद मेरी आँखें किसी जरूरतमन्दके लिये सुरक्षित रख ली जायँ।

वृद्ध विधवाका सर्वस्व-दान

श्रीमती चौहारिया बाई नामक एक वृद्ध विधवाने विलासपुर जिलेमें अपने गाँव सिमनीमें लड़कियोंका एक स्कूल बनानेके लिये राज्य-सरकारको अपनी सारी जायदाद दानमें दे दी है।

विधवाने यह भेंट मध्यप्रदेशके उपवित्तमन्त्री श्रीएम० पी० दुबेको उस समय दी, जब वे गाँवमें एक सार्वजनिक सभामें भाषण दे रहे थे। जब स्थानीय नेता उपमन्त्री महोदयका स्वागत कर रहे थे, यह वृद्धा मञ्चपर चढ़ गयी और पंद्रह सौ रुपये नकद तथा सात सौ रुपयेकी कीमतके अपनी भूमिके कागजात उन्हें दिये। उसने जल्दी ही पाँच सौ रुपये और देनेका वचन भी दिया। इस वृद्धाने उपमन्त्रीसे अनुरोध किया कि स्कूलका निर्माण जल्द होना चाहिये, जिससे कि वह उसे अपने जीवनकालमें ही फलता-फूलता देख सके। वह कहती है, ज्ञानकी वृद्धि और प्रसारमें ही ईश्वरकी भक्ति संनिहित है। दूसरोंको ज्ञान-प्राप्तिका अवसर देना ही सच्ची पूजा है।

चपरासीकी कर्तव्यपरायणता

बुलन्दशहरके श्रीदुर्गाप्रसाद नामक एक स्कूलचपरासी-को डकैतोंने बहुत पीटा और सब नकदी लूट ली। जब वे उससे साइकिल छीनने लगे, तब वह अड़ गया। वह साइकिल स्कूलकी सम्पत्ति थी और इस प्रकार सार्वजनिक सम्पत्तिकी रक्षा करना उसका धर्म था, पवित्र कर्तव्य था। उसने वह साइकिल तबतक न दी जबतक कि डकैतोंने उसे गोली मार-कर धराशायी ही न कर दिया। यह चपरासी बुलन्दशहरके शर्मा हायर सेकेन्डरी स्कूलमें नौकर था।

वह अपने गाँवको जरूरी कामसे जा रहा था कि रास्तेमें डकैतोंने उसे घेर लिया। चपरासीके पास जो नकदी थी, वह तो उन्होंने छीन ली। जब वे उससे साइकिल छीनने लगे, तो उसने विनीत स्वरमें कहा, 'तुम मेरी सब चीजें ले सकते हो, परंतु स्कूलकी चीज मैं किसी भी दशामें नहीं दे सकता; क्योंकि यह सार्वजनिक सम्पत्ति है। मैं उसकी सुरक्षाको सबसे बड़ी बात समझता हूँ।'

कर्तव्यपालन ईश्वरकी सर्वश्रेष्ठ पूजा है। उपकारशील मनुष्यके हृदयमें सदैव सत्कर्मोंके स्रोत फूटते हैं; क्योंकि उसके मनमें ईश्वर जड़रूपमें विद्यमान रहते हैं।

प्रजापतिः—बहुधा वि जायते। (अथर्ववेद १०।८।१३)

अर्थात् इस विश्वमें परमात्मा ही अनेक रूपोंसे जन्म ले रहा है। संसारके सब प्राणधारी परमात्माकी प्रतिमूर्तियाँ हैं।

याद रखिये—

मर्त्या हवाअग्ने देवा आसुः।

(शत० ब्राह्मण ११।१।२।१२)

अर्थात् इस दुनियामें मनुष्य शुभ कार्य करके ही देव बनते हैं। जैसे भी बन पड़े शुभ कर्म करो और इसी शरीरसे भू-सुरका पद प्राप्त करो। धर्मकर्तव्योंका पालन करनेवाले ही देवता हैं।

मनुष्यका स्थायी धन

(लेखक—पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम्० ए०)

मनुष्यके धन दो प्रकारके होते हैं—एक बाहरी और दूसरा भीतरी। सांसारिक जीवनमें कुशल व्यक्ति बाहरी धनका चिन्तन करते हैं और उसकी प्राप्तिके अनेक साधन खोज लेते हैं। लौकिक धनकी कीमत करनेवाले लोगोंके विचारोंका संचालन उनके लौकिक लाभसम्बन्धी विचार ही करते हैं। उनका किसी व्यक्तिके प्रति स्नेह स्वार्थवश ही होता है। उनका न्याय और अन्यायका निर्णायक भी निज स्वार्थकी पूर्ति अथवा उसका विनाश होता है। अतएव बाहरी धनकी कीमत करनेवाले लोगोंकी न्यायप्रियतापर विश्वास भी नहीं किया जा सकता।

मनुष्यके बाहरी व्यवहारसम्बन्धी विचार भी उसकी भीतरी इच्छाओंद्वारा संचालित होते हैं। जिस व्यक्तिकी भोग-इच्छाएँ बहुत ही प्रबल हैं, जो बहुत-सी बड़ी-बड़ी भोग-कामनाएँ रखता है, वह किसी दूसरेके स्वार्थका ध्यान ही नहीं रख पाता। जिस बातमें उसके स्वार्थकी सिद्धि नहीं होती, उसमें उसकी रुचि भी नहीं होती। सदा बाहरी लाभका चिन्तन करनेवाले ऐसे लोग दूसरोंके प्रति न्याय करनेमें असमर्थ रहते हैं।

धन वह पदार्थ है जिसकी प्राप्तिसे मनुष्यको सुख हो। ऐसे ही पदार्थ मूल्यवान् कहलाते हैं। किसी भी मूल्यका निर्माण मनुष्यके मनके द्वारा होता है। मनुष्य जिस पदार्थके बारेमें चिन्तन करता है, वही उसके लिये मूल्यवान् है। पैसेका लाभ तथा कामवासनाकी तृप्ति—दो ही मनुष्यकी प्रमुख वासनाएँ हैं, जिनके द्वारा मनका चिन्तन संचालित होता है। सामाजिक आदरका भाव भी मनुष्यके चिन्तनका कारण बन जाता है। इन तीन प्रकारकी इच्छाओंमें आपसमें संघर्ष भी होता है जिससे मनुष्य निम्न स्तरकी बातोंको छोड़ ऊँचे स्तरकी बातोंके बारेमें सोचता है। किसी भी प्रकारका संघर्ष मनुष्यको गम्भीर चिन्तनके लिये बाध्य करता है। वह उसकी चेतनाको संघर्षके स्तरसे ऊपर उठाता है। जिस व्यक्तिको बाहरी संघर्षका सामना नहीं करना पड़ता, वह बाहरी जगत्में नीचा ही पड़ा रहता है। जिस व्यक्तिके मनमें आन्तरिक संघर्ष नहीं होता वह भी भीतरी मनसे अविकसित रह जाता है। जिस मनकी स्थितिमें मनुष्य पड़ा है, जबतक वह अप्रिय न बन जाय तबतक वह उसे क्यों छोड़ेगा? संघर्षके कारण मनुष्यकी चेतना निम्न स्तरके मूल्योंको छोड़कर अपने आप ही ऊपर उठ जाती है।

प्रत्येक प्रकारके बाहरी मूल्योंका अभाव सुनिश्चित है। चाहे पैसा-रुपया हो, चाहे मकान-दूकान, चाहे कोई पद हो—सभी जानेवाले ही हैं। मनुष्यका शरीर भी उसके साथ नहीं रहेगा। उसके सगे-सम्बन्धी भी उसे छोड़ देते हैं। ऐसी अवस्थामें वह मनुष्य मूर्ख है जो अपने मूल्योंका निर्माण चले जानेवाली वस्तुओंमें करता है। मनुष्यमें जब विचारकी

परिपक्वता आती है, तब वह सहजमें ही अस्थिर मूल्योंसे विरत हो जाता है। वह ऐसे तत्त्वकी खोज करता है जो देरतक ठहरे। फिर संसारके सभी पदार्थोंकी नश्वरताको देख वह उनकी प्राप्तिकी चेष्टामें ही अपने आपको नहीं खो देता। वह इन पदार्थोंकी प्राप्तिकी चेष्टा उतनी ही दूरतक करता है जिससे उसका काम चल जाय।

सभी प्रकारके मूल्योंका निर्माण उनके विषयमें भावात्मक ढंगसे सोचनेसे होता है। हम जिस विषयके बारेमें सोचते हैं वह हमें प्यारा बन जाता है और जिस पदार्थमें हमारी प्रियता आरोपित हो जाती है, उसीके विषयमें हम चिन्तन भी करते हैं। प्रियताका संचय करना ही मनुष्यका सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। मनुष्यका मन ही मूल्योंका निर्माण करता है। जिस मनुष्यका मन अपने नियन्त्रणमें है उसके मूल्य भी उसी वशमें है। वह परावलम्बी न बना रहकर स्वावलम्बी बना रहता है। मानसिक स्वावलम्बनकी प्राप्तिसे अधिक महत्त्वकी कोई बात नहीं है।

यह मानसिक स्वावलम्बनकी प्राप्ति दो प्रकारसे होती है। एक सचेत होकर संसारके पदार्थोंकी प्राप्ति करनेकी चेष्टासे, दूसरे अपनी चेतनाके प्रसारको अन्तर्मुखी बनाकर। जिस प्रकार दूसरे लोग संसारके कामोंमें लगे रहते हैं, उसी प्रकार ज्ञानवान् पुरुषको भी संसारके पदार्थोंकी प्राप्तिमें लगे रहना पड़ता है। इससे वह अपने आपको लौकिक दृष्टिसे अजनवी व्यक्ति नहीं बना लेता। दूसरे, उसे इससे मानसिक परिपक्वता आती है। मानसिक परिपक्वताकी अवस्थामें मनुष्यको किसी प्रकारकी वस्तुकी चाह नहीं रहती। यदि वह उसके पाससे चली जाय तो वह अपने आपको ही समाप्त नहीं कर देता।

मानसिक परिपक्वता उस व्यक्तिको नहीं आती जो लौकिक लाभमें ही चिपका रहता है। ऐसा व्यक्ति बूढ़ा होकर भी मनसे बचा ही है। कभी-कभी किशोर बालक भी मानसिक दृष्टिसे सयाना हो जाता है। उसमें मानसिक परिपक्वता आ जाती है। यह मानसिक परिपक्वताकी प्राप्ति सम्पूर्ण समाजके प्रयासका परिणाम है। किसी भी व्यक्तिमें बचपनसे लौकिक लाभोंके प्रति वैराग्य-भावनाका आ जाना उस सामाजिक विकासका परिणाम है जिसमें वह पला है। कभी-कभी बालकोंमें वैराग्यका भाव बौद्धिक परिपक्वता आनेके पूर्व ही आ जाता है। बौद्धिक परिपक्वता बौद्धिक विकाससे आती है। इसके लिये संसारके बुद्धिमान् लोगोंके सम्पर्कमें आना आवश्यक है। भावोंकी परिपक्वता भी उसी प्रकार भावोंमें उठे हुए लोगोंके सम्पर्कसे आती है। इस प्रकार एक वैराग्यवान् अथवा ऊँचे आदर्शके लोगोंके सम्पर्कमें आते ही अनेक नवयुवक अथवा किशोर बालक वैसे ही बन जाते हैं। संसारमें महापुरुषोंकी बड़ी उपयोगिता है। वे अपनी उपस्थितिमात्रसे संसारके अनेक होनहार बालकों और नवयुवकोंकी चेतनाको प्रबुद्ध और विकसित कर देते हैं। उनसे तादात्म्य करके कभी-कभी समाज-का-समाज सुधर जाता है। उनके ध्यानमात्रसे लौकिक उलझनोंमें फँसी चेतना उन उलझनोंके ऊपर अनायास उठ जाती है।

मानसिक स्वावलम्बन-प्राप्तिका दूसरा उपाय नित्यप्रति अपनी चेतनाको अन्तर्मुखी करनेका अभ्यास है। चेतनाको अन्तर्मुखी करनेका प्रयास ही 'योग' कहा जाता है। पतञ्जलिकी तथा बुद्धकी शिक्षा चेतनाको अन्तर्मुखी बनानेकी शिक्षा है। इसके लिये भी विवेकके जाग्रत्‌की आवश्यकता है। विवेकके द्वारा मनुष्यकी चेतना धीरे-धीरे अनेक प्रकारके विषय-अनुरागसे मुक्त हो जाती है। यदि मनुष्य अपनी चेतनाको उसी समय अन्तर्मुखी बनानेका प्रयास करे, जब वह अनेक प्रकारके विषय-अनुरागमें फँसी है, यदि हठ करके योगाभ्यास करने लगे तो वह मानसिक एकीकरण प्राप्त न कर मानसिक रोगका शिकार बन जाता है। मानसिक शुद्धिके बिना योगाभ्यास करने लग जाना खतरेसे खाली नहीं है। पागलखानेके रोगियोंकी जीवनीके अध्ययनसे पता चला है कि वे कभी-न-कभी अपनी प्रबल वासनाके दमनके हेतु योगाभ्यास करने लगे थे। ऐसे लोगोंको जान-बूझकर मानसिक शुद्धि और परिपक्वताके निमित्त लौकिक कामोंमें लग जाना चाहिये।

मानसिक परिपक्वता-प्राप्तिका एक उपाय अपने प्रेमका प्रसार करना है। मनुष्य जो कुछ करता-धरता है, वह जो कुछ कमाता है, अपने प्रियजनोंके लिये ही सब कुछ करता है। कोई भी व्यक्ति सर्वथा स्वार्थी रहकर जी नहीं सकता। अपने बाल-बच्चोंके हितका चिन्तन सभी लोग करते हैं। अपने मित्रोंको हर एक व्यक्ति प्रसन्न रखना चाहता है। परंतु इस प्रकारके प्रयासका अन्तिम परिणाम दुःख ही होता है। अपने ही लोगोंके हितका ध्यान न रखकर काम करनेके

बदले यदि हम राष्ट्रके हितका अथवा समाजके अन्य लोगोंके हितको ध्यानमें रखकर काम करने लगें तो हममें वह मानसिक परिपक्वता आ जाय, जिससे दुनियाकी सामान्य दुःखद घटनाओंसे हम विचलित न हों।

मनुष्यके कामके जो आन्तरिक हेतु होते हैं, वे ही उसे स्थायी आनन्द अथवा दुःख देते हैं। मनुष्यकी स्थायी सम्पत्ति उसका मानस-अभ्यास ही है। सुख-दुःख भावात्मक अभ्यासके परिणाम हैं। यदि हम अपने भावोंको किसी अस्थिर पदार्थपर न जमाकर किसी स्थिर विचारपर जमावें तो हमें दुःखकी अनुभूति न हो। मनुष्यका आध्यात्मिक धन उन विचारोंका है, जिनमें उसका विश्वास है और जिनके अनुसार उसका प्रतिदिनका आचरण बनता है।

जिस व्यक्तिके भाव संसारके अनेक दुखी लोगोंपर बँटे हुए हैं, जो नित्यप्रति इनके प्रति प्रेमकी अनुभूति करता है, वह सम्पत्तिहीन होकर भी प्रसन्न रहता है। अतएव प्रतिदिन मनुष्यको सामान्य लोगोंके प्रति मैत्रीभावनाका अभ्यास करना नितान्त आवश्यक है। अपने ही हितका चिन्तन मनुष्यके भावोंको विगाड़ता है और परहितका चिन्तन ही उसके भावोंको सुधारता है। यही मनुष्यका संचित स्थायी धन बन जाता है।

शौर्य

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

'स्वभावविजयः शौर्यम्।'

'आप यदि मेरा अनुरोध स्वीकार कर लें, हम सबपर असीम अनुग्रह होगा।' ब्राह्मणके साथ न बलप्रयोग किया जा सकता और न उन्हें आज्ञा दी जा सकती, केवल प्रार्थना की जा सकती थी। जिनका सम्पूर्ण प्रजा सुरोंके समान सम्मान करती है, उन शास्त्रज्ञ, विरक्त, भगवान् लोकनाथके आराधककी सुरक्षा सबसे अधिक आवश्यक थी; किंतु सुरक्षाके लिये भी उनकी अवमानना तो की नहीं जा सकती। इस बंगदेशके छोटेसे राज्यकी शक्ति ही कितनी है कि उस लोकभयंकर कालापहाड़का प्रतिरोध किया जा सके। साश्रुनेत्र राजाने प्रार्थना की—'वह पिशाच देव-द्विज-द्रोही है और निसर्ग-क्रूर है।'

'राजन्! नश्वर शरीर इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है कि उसके मोहसे ब्राह्मण अपने आराध्यका सांनिध्य-त्याग करे।' उन श्वेत रोम-केश, वलीपलितकाय, ताम्र गौर वृद्धका विशाल भाल सौम्य तेजसे भूषित था। उनके सुदीर्घ दृगोंमें भयका कोई भाव नहीं था। 'भगवान् लोकनाथका श्रीविग्रह अचल-प्रतिष्ठ स्वयम्भू विग्रह है। उसे स्थानच्युत करनेकी बात सोची नहीं जा सकती। उन प्रलयंकरने यदि अपने इस विग्रहके तेजोपसंहारका संकल्प किया है तो इस देहकी पादाञ्जलि भी उन्हें प्राप्त होनी चाहिये। तुम प्रजा तथा अपने परिवारकी रक्षा करो।'

'प्रजाके रक्षणीयवर्गको यथाशक्य सुरक्षित स्थानोंपर भेजा जा रहा है।' राजाके स्वरमें कोई उत्साह नहीं था। 'वैसे वह मृत्युका दूत किधरसे आयेगा, कहाँ उसके क्रूर कर क्या-क्या करेंगे, कोई अनुमान नहीं है। केवल देवस्थान, विप्र एवं क्षत्रियवर्गका वह संहारक है। राजपरिवारके साथ सैनिकोंके स्वजन भी स्थानान्तरित किये गये हैं। अब तो आप आशीर्वाद दें कि अपने क्षात्रधर्मकी रक्षा करता हुआ यह शरीर सार्थक हो।'

'तुम शूर हो।' उन तपोधनने एक बार आकाशकी ओर इस प्रकार देखा जैसे नियतिकी अव्यक्त लिपि पढ़ रहे हों। 'मरण भी उसका मङ्गलपर्व ही है जो जीवन-यज्ञकी पूर्णाहुति जनताके आतङ्कको समाप्त करनेके लिये कर सके।'

'यह अल्पप्राण आत्माहुति मात्र दे सकता है और उसके लिये आये इस अवसरका सम्पूर्ण उपयोग करेगा।' राजाके शब्दोंमें दृढ़ निश्चयके साथ निराशाकी वेदना थी—'लेकिन आतङ्कका अन्त अनावधि लगता है। कहीं मैं इस भारत-भूमिके आतङ्कका सचमुच अन्त कर पाता।'

'राजन् ! जो द्वेष तथा स्वार्थरहित है, जिसने अपनी स्वाभाविक दुर्बलताओंको विजित कर लिया है, उसका बलिदान व्यर्थ कर देनेकी शक्ति विश्व-नियन्तामें भी नहीं है।' ब्राह्मणका मुख तेजोदीप्त हो गया। नामिकमलसे उठते परावाणीके पूर्ववर्ती स्वर पश्यन्तीसे अलंकृत आशीर्वाद दे गये—'तुम्हारा आत्मदान आतङ्कके अन्तका अवश्य निमित्त बनेगा।'

'देव !' नरपतिने विह्वल होकर उनके चरण पकड़ लिये। 'मेरा जन्म सार्थक हो गया है इन श्रीचरणोंकी सेवा करके और मेरे मरणको अशून्य कर दिया इस आशीर्वादने; किंतु आप······।'

'मेरी चिन्ता मत करो। मैं उन लोकनाथके अङ्कमें अभय बैठा हूँ।' वे महापुरुष इस समय ऐसे स्वरमें बोल रहे थे, जिसकी सत्यतामें संदेह किया नहीं जा सकता था। 'आतङ्कके अन्तमें ब्राह्मण अपना सहयोग नहीं देगा तो कर्मकी पूर्णता कैसे होगी ?'

× × ×

'कालपहाड़ आ रहा है !' कितना भयंकर है यह संवाद। प्रलयका संदेश भी इतना दारुण नहीं होगा। वह नृशंसताकी नग्न मूर्ति—जनपदोंको फूँकते, रौंदते, मानवके छिन्न-भिन्न शवोंसे मेदिनीको बीभत्स बनाते, पिशाचोंकी सेनाके समान आँधीके वेगसे आनेवाला निष्ठुर हत्यारा जिधर जाता है, पूरी दिशा उजाड़ हो जाती है और वह आ रहा है।

'कालपहाड़ आ रहा है !' प्रतिहिंसाने उस मानवको दानव बना दिया है। वह हिंदूधर्ममें अपनाया नहीं गया। एक बार धोखेसे—विवशतासे धर्मभ्रष्ट हो जानेपर और अब वह अपनी क्रूरतापर उतर आया है। जिसके अन्तरमें इतनी दारुण हिंसा छिपी थी, वह धार्मिक ही कब था कि उसे कोई धर्मज्ञ स्वीकार करता। वह ध्वंसका दूत, सुना इधर ही आ रहा है।

'कालपहाड़ आ रहा है !' शिशु यह सुनते ही भयसे माताके अङ्कमें मुख छिपा लेते हैं। बालक क्रीड़ा त्यागकर घरोंकी ओर भागते हैं। नारियोंके सिरसे जल-कलश गिर जाते हैं। दूसरोंकी चर्चा व्यर्थ है, अच्छे-अच्छे शूरतक सशङ्क हो उठते हैं और खड्गकी मूठपर कर रखकर भी अश्वकी पीठपर पहुँचनेकी त्वरा उन्हें हो जाती है। आज तो उसके सचमुच आनेका समाचार आया है।

'कालपहाड़ आ रहा है !' जनपद उजाड़ बन गये। भवन उलूक-शृगालोंके आवास बननेको त्याग दिये गये। केवल सुन्दर वनका दलदल तथा अरण्य लोगोंको जीवन-रक्षाका आश्रय जान पड़ रहा था। वनके व्याघ्र, गज तथा महाकाय सर्प उस दैत्यकी अपेक्षा कम भयानक थे।

'कालपहाड़ आ रहा है !' लोगोंके समूह भागते आ रहे थे। पैदल और छकड़ोंका अनन्त समूह बराबर बढ़ता जा रहा था। घर-द्वार, भूमि-उपवन तथा अपने परम प्रिय, 'पोखर' त्यागकर किस विपत्तिमें बंगीय परिवार इस प्रकार अनिश्चित प्रवास करता है, बड़ा दारुण है यह अनुमान भी। लोग आते गये और उनके साथ मार्गके लोग भी सम्मिलित होते गये।

'कालपहाड़ आ रहा है !' प्रत्येक मुखपर एक ही चर्चा। प्रत्येक मार्ग जैसे सुन्दर वन ही जा रहा है। उनपर मानव-प्रवाह, जैसे शत-शत धाराओंमें भगवती भागीरथी समुद्रको अङ्कमाल देने यहाँ धावित हैं। सब मुख श्रीहीन, भय-विह्वल। बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष और उनके पशु भी साथ हैं।

'कालपहाड़ आ रहा है !' उसका आक्रोश केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं देवस्थानोंपर है; किंतु उसके क्रूर म्लेच्छ सैनिक कोई मर्यादा मानते हैं ? वे जब स्वधर्मियों-तकको लूटनेमें संकोच नहीं करते, दूसरा उनकी दयाका विश्वास करके कैसे रुका रह सकता है ?

'कालपहाड़ आ रहा है !' इस आतङ्कके भगदड़के मध्य अकस्मात् एक दिन ग्राम-ग्राम, पथ-पथमें एक भेरीघोष-के साथ घोषणा सुनायी पड़ी—'कालपहाड़ कोई यमराज नहीं है। हो वह यम; किंतु मृत्यु दो बार नहीं आती। युवको ! तरुणो ! देश तुम्हें पुकारता है ! धर्म तुम्हारा आह्वान करता है ! तुम इस पुकारको अनसुनी कर दोगे ?'

'देश पुकारता है ! धर्म पुकारता है !' चलते छकड़े रुक गये। भागते पद स्थिर हो गये। नारियाँतक उत्कर्ण सुनने लगीं। उद्घोषक कह रहा था—'आराध्य पीठपर अविचल खड़ी भगवन्मूर्तियाँ पुकारती हैं तुम्हें ! देव-ब्राह्मणों-

की रक्षाका महापर्व आज पुकार रहा है ! तुम इसे अनसुना कर सकोगे ?'

'नहीं ! हम सुनेंगे यह पुकार । क्या करना है हमें ?' युवकों, तरुणों ही नहीं, वृद्धोंतकने उद्घोषकोंको स्थान-स्थानपर घेर लिया । अनेक स्थानोंपर नारियाँ आगे आ गयी थीं—'बतलाओ ! क्या करना है हमें ?'

'हम कालापहाड़को मार भले न सकें, अपने मस्तकोंसे उसका मार्गावरोध अवश्य कर सकते हैं ।' उद्घोषक बोल रहा था । 'राजा क्षमासेनने खड्ग उठाया है । उनके पीछे मृत्युके इस महातीर्थमें स्नान करनेका जिनमें साहस हो, आ सकते हैं वे । उनका स्वागत ! कापुरुषोंकी हमें कोई आवश्यकता नहीं है ।'

'हम आयेंगे !' जिनके समीप शस्त्र नहीं थे, वे भी लाठी उठाये आगे आये । केवल एक प्रश्न था प्रत्येकका—'क्षमासेन युद्ध करेंगे ?'

'क्षमासेन युद्ध करेंगे !' उद्घोषकने दृढ़ स्वरमें घोषणा की । 'ब्राह्मण तथा माताएँ क्षमा करें । उन्हें वृद्ध, बालक तथा अन्य असमर्थोंका आश्रय बनना चाहिये । उनका शौर्य वनमें भी सार्थक होगा, यदि वे असमर्थोंकी वन्यप्राणियोंसे रक्षामें सावधान रहें ।'

'क्षमासेन युद्ध करेंगे !' इस चर्चाने जैसे कालापहाड़के आतङ्कको पहले ही पराजित कर दिया । अब 'कालापहाड़ आ रहा है ।' के स्थानपर जन-जनमें चर्चाका विषय बन गया—'क्षमासेन युद्ध करेंगे ।'

'क्षमासेन युद्ध करेंगे !' प्रत्येक श्रोता एक बार अविश्वास-से कहनेवालेका मुख देखता रह जाता था । बचपनसे जो अपनी दया, उदारता, क्षमाके लिये प्रसिद्ध हैं, अपना अपमान करनेवाले नायकको भी जिन्होंने दण्ड नहीं दिया, राजकुलका अहित करनेवाले सेवकको भी जिन्होंने वृत्ति दी, जिन्हें क्रोध करते देखा ही किसीने नहीं, वे नरपति शस्त्र उठायेंगे ?

'क्षमासेन युद्ध करेंगे !' किसीके अपराधका दण्ड देना जिन्हें आता नहीं । प्रजामें कोई उद्धत हो तो उसके सुधारके लिये जो स्वयं उपवासका अनुष्ठान कर लेते हैं, जो प्रजा तथा पुत्रमें भेद नहीं कर पाते और कोई शत्रु भी है, यह जिन्हें समझाया नहीं जा पाता, वे संग्राम करने आयेंगे, यह सहज विश्वास करनेयोग्य बात नहीं थी । राजाके सम्बन्धमें अनेक किंवदन्तियाँ उस छोटे राज्यमें तथा उससे बाहर भी फैली थीं । यह लोकस्वभाव है कि छोटी घटना भी फैलती है तो उसका रूप बहुत बड़ा बन जाता है । क्षमासेनके सम्बन्धमें भी यही हुआ था । लोगोंमें तो बात यहाँतक फैली थी कि उनके नरेश अस्त्र छू जाय तो स्नान करते हैं । अतः उनके युद्धकी घोषणा जहाँ अविश्वसनीय प्रतीत हुई, अत्यधिक प्रेरणाप्रद भी बनी वह ।

× × ×

'कापुरुष ! तू और कर क्या सकता था ?' कोई इस प्रकार भी कालापहाड़को कह सकता है, उसने कल्पना भी नहीं की थी । जिस प्रचण्ड झंझावातके सम्मुख महारण्यके तरु समूल धराशायी हो जाते हैं, उसको एक उद्यान क्या अवरोध उत्पन्न कर सकता है । क्षमासेन अपने सैनिकों, सहायकोंके साथ खेत रहे । रणभूमिसे रक्ताक्त शरीर, अंगार-नेत्र, शोणितस्रावी तलवार लिये कालापहाड़ सीधे लोकनाथ-मन्दिर आया था । वह अपने हाथों इस प्रसिद्ध श्रीमूर्तिको नष्ट करनेका संकल्प इस ओर अभियानसे पूर्व ही कर चुका था । नील वस्त्रधारी, म्लेच्छ सेनाके कुछ मुख्य नायक उसके पीछे प्रेतोंके समान आये थे । उन उद्धत लोगोंके अश्व मन्दिरके भीतर गर्भगृहके सम्मुखतक आये । किंतु जैसे ही अश्वपरसे वह कूदा, वृद्ध पुरोहित द्वारपर सम्मुख दीखे ।

'कापुरुष ! कालापहाड़ कापुरुष है ? मूर्ख ब्राह्मण ! क्या कहता है तू ?' चीखा वह कज्जल-कृष्ण-वर्ण, अत्यन्त दीर्घ एवं प्रचण्डकाय दैत्य !

'इस असहायोंकी हत्यासे अपवित्र शस्त्र और इन स्वर्ण-लोभी, प्राणिपीड़न प्रिय प्रेतोंको लेकर तू अपनेको शूर समझता है ? कायर कहींका !' वृद्ध ब्राह्मणकी वाणीमें केवल शब्दोंकी ही तीक्ष्णता नहीं थी, उसमें वह उपेक्षा तथा तिरस्कार था जो कुत्तेको भी कोई नहीं देता । 'शूर था वह जो तुझ नारकीयका प्रतिरोध करनेमें प्राण देकर सुरपूजित हो गया । तू अभिमान-उद्धत भीरु !'

'ले !' हाथका शस्त्र कालापहाड़ने पूरी शक्तिसे एक ओर फेंक दिया । झनझनाकर टूट गयी वह भारी तलवार । पीछे घूमकर उसने अपने अनुचरोंको आदेश दिया—'दूसरे सब बाहर चले जायँ ।'

'नपुंसक ! मैं नहीं जानता था कि तू मूर्ख भी है ।' ब्राह्मणने झिड़क दिया । 'अब तू वृद्ध ब्राह्मणसे बाहुयुद्ध करनेको उद्यत है । तू समझता है कि शौर्य सैनिकोंमें और

शस्त्रमें नहीं है तो तेरे इस प्रतिहिंसापरायण पापी शरीरमें है। हड्डी, मांस और विष्ठामें शौर्य है—यह तुझ-जैसा नारकीय ही समझ सकता है।'

'ओह !' कालापहाड़ने अपने अधर दाँतसे इतने जोरसे दबाये कि उनसे रक्त टपकने लगा। क्रोधके अधिकतम आवेशसे नेत्रोंसे टपाटप आँसू टपकने लगे, स्वेद-स्नात शरीर थरथर काँपा कुछ क्षण और स्तम्भित—जड हो गया। वह पलकतक गिरा नहीं पाता। मूर्तिके समान स्थिर खड़ा है वह। उसके नेत्र अंगारके समान जल रहे हैं। सर्पके समान फूत्कारयुक्त श्वास छोड़ रहा है वह।

'शौर्य चित्तका गुण है। चित्तकी स्वाभाविक विक्रियाको जीतकर वह प्राप्त होता है। स्वभाव—मनके विषयाभिमुख दौड़नेको, क्रोध-रोषको और राग-द्वेषको जीत लेनेका नाम है शौर्य। तुझमें साहस है शौर्यकी प्राप्तिका ?' बड़ी बेधड़क दृष्टिसे देखते हुए दक्षिण हस्त पूरा फैलाकर उन्होंने द्वारकी ओर निर्देश किया—'जा ! विश्वनाथका यह द्वार तुझ-जैसे कापुरुषके लिये नहीं है। निकल जा !'

पता नहीं क्या हुआ, कालापहाड़ घूमा और सचमुच निकल गया। वह अपने क्रोधसे ही उन्मत्त हो गया था। उसके पश्चात् रोगशय्यासे वह उठ ही नहीं सका।

गौकी रक्षा बलिदानके बिना नहीं

(लेखक—श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज)

'गवार्थे ब्राह्मणार्थे च सद्यः प्राणान् परित्यजेत् ॥'*

छप्पय

बीरो ! बीरो !! उठो उठो मत देर लगाओ।
गोमाता डकराइ ताइ अब आइ बचाओ॥
चलीं बहुत दिन छुरीं गरे पै अब न चलैंगी।
मिलीं बहुत धिक्कार जगतमें अब न मिलैंगी॥
माँके हित मरि जायँगे, गोवध बंद करायँगे।
पीछे पग न हटायँगे, गोरक्षक कहलायँगे॥

गौको हमने अनादिकालसे माता मान रक्खा है। गौ और आर्यधर्मका ऐसा अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है कि आर्यधर्म गोरक्षाके बिना रह नहीं सकता तथा गोरक्षा बिना धर्मके हो नहीं सकती। गौ बैल तथा साँड़ देती है, गौ दोषरहित विशुद्ध सर्वोत्तम जीवनदाता दुग्ध देती है, जिससे दही, मट्ठा, मक्खन, घृत, खोवा तथा विविध भाँतिकी खोवाकी मिठाइयाँ बनती हैं। गौका मूत्र, गोबर—सभी वस्तु एक-से-एक पवित्र तथा परमोपयोगी हैं। इन बातोंपर हमें यहाँ विचार नहीं करना है। यद्यपि हैं ये सभी बातें परमोपयोगी, परंतु यह आर्थिक दृष्टिकोण है। हमें तो यहाँ धार्मिक दृष्टिकोणसे विचार करना है, और बिना धार्मिक दृष्टिकोण रक्खे, बिना सद्भावनाके गौकी रक्षा हो नहीं सकती। गौको एक दूधका यन्त्र मानकर गो-संरक्षण, गो-संवर्धन और नस्ल-सुधार आदि हो सकते हैं। वह गौरूपी दूधके यन्त्रसे घी-दूधका व्यापार कहा जा सकता है। जैसा कि पाश्चात्त्य देशवाले करते हैं। वे गौको ऐसी-ऐसी वस्तुएँ खिलाते हैं, जिनसे उनका अधिकाधिक दूध बढ़ सके—जिनमें मछलीका तेल तथा अन्य अशुद्ध वस्तुएँ हैं। वे लोग बच्चा देते समय गौकी आँखें बाँध देते हैं, बच्चेको पैदा होते ही माँसे पृथक् कर देते हैं। उसे देखने नहीं देते; सूँघने, चाटने, चूमने नहीं देते। स्तनोंमें मुँह नहीं लगाने देते। जिससे वात्सल्यभाव जाग्रत् न होने पाये। बछड़ेको माँका भी दूध नहीं पिलाते, अन्य गौओंका पिलाते हैं। बछड़ोंको तो वे मारकर खा जाते हैं। बिना बछड़ेके दूध निकालते हैं। जो गौ अधिक दूध नहीं देती या दूध देनेमें अड़चन करती है अथवा अधिक दुधारू नहीं होती, उसे वे अनुपयोगी कहकर खा जाते हैं। उनकी दृष्टिमें गौ वही है, जो युवती हो, अधिक-से-अधिक दूध दे। शेष सब अनुपयोगी हैं, उनका एकमात्र उपयोग यही है कि उन्हें काटकर खा जाना। यह पाश्चात्त्य दृष्टिकोण है। फौजोंमें जो गौएँ रक्खी जाती हैं, वे भी इसी दृष्टिकोणसे रक्खी जाती हैं। प्रयागके उस पार नैनीमें तथा अन्यान्य स्थानोंमें जो डेरी हैं, उनमें भी प्रायः यही दृष्टिकोण अपनाया जाता है; किंतु हमलोग जो गौको माता मानते हैं, इस दृष्टिकोणको कभी भी नहीं अपना सकते। हमारे लिये गौ

* गौ और ब्राह्मणोंकी रक्षाके निमित्त तुरंत प्राणोंका परित्याग कर देना चाहिये। इन दोके लिये प्राण छोड़नेपर आत्महत्याका पाप नहीं लगता।

माता पहले है और उपयोगी पशु पीछे है। गौ कैसी भी हो, वह दूध देती हो या न देती हो। हम उसे मार देनेकी कल्पना कभी कर ही नहीं सकते। गौमात्रकी रक्षा हम सदासे करते आये हैं और सदा करते रहेंगे। सुनते हैं एक बार जब श्रीविनोबा भावे प्रयाग गये थे, तब नैनी होकर जा रहे थे। नैनीके ईसाइयोंने उन्हें अपनी संस्थामें चलनेको कहा तो उस संस्थाकी ओर वे पीठ फेरकर खड़े हो गये और बोले—'आपलोग चलनेको कहते हैं, मैं तो आपकी संस्थाकी ओर मुख भी न करूँगा; क्योंकि वहाँ तुरंत पैदा हुए गौके बच्चोंको मार दिया जाता है।'

गौके साथ हमारी धार्मिक भावना जुड़ी हुई है। यद्यपि गौ कभी भी अनुपयोगी नहीं होती। बूढ़ी होनेपर भी वह खादके रूपमें इतना गोबर दे देती है, जो उसके भोजनभरको पर्याप्त है। इसके आँकड़े आजसे बहुत दिन पहले देशी ही नहीं, विदेशी विशेषज्ञोंने भी लगाये हैं; किंतु मैं यहाँ इसके विस्तारमें जाना नहीं चाहता। यहाँ तो मैं यही बताना चाहता हूँ कि गौ हमारी माता है, उसकी रक्षा जैसे भी हो, हर मूल्यपर हमें करनी ही चाहिये।

गौके प्रति हमारी माताकी भावना नयी नहीं, सनातन है। पुराणोंमें ऐसी अनेकों आख्यायिकाएँ हैं, जिनमें लोगोंने गौओंकी रक्षाके लिये अपने प्राणोंका हँसते-हँसते बलिदान कर दिया है। पाश्चात्त्य देशोंमें गौका उपयोग केवल दूधके लिये ही होता है। हल जोतने, बोझा ढोने तथा सवारी आदिका कार्य घोड़ोंसे लिया जाता है। वहाँके किसानोंको दूध पीनेको गौ और खेती करनेको घोड़े दो जानवर रखने पड़ते हैं; किंतु हमारे यहाँ एक गौसे ही दोनों काम होते हैं। गौका तो दूध पीते हैं, उनके बछड़ोंसे हल चलाते, कूएँसे पानी निकालते, उन्हींको गाड़ीमें बोझा ढोते, सवारीके लिये रथ, बहली गाड़ीमें उन्हें जोतते। उनकी खादसे पैदावार बढ़ाते। गौ हमारे इहलोक तथा परलोक दोनोंमें परमोपयोगी मानी जाती है। अब हमारी सरकारके उच्चाधिकारी विदेशी नहीं स्वदेशी, अन्य धर्मावलम्बी नहीं अपनेको हिंदू संतान कहलानेवाले हमें सलाह देते हैं कि 'आर्थिक दृष्टिसे गौ उपयोगी नहीं। अतः खेतीके कामोंके लिये तो ट्रेक्टर आदि मशीन रक्खो और दूधके लिये भैंस रक्खो। गौको सर्वथा छोड़ दो।' किंतु इस दृष्टिकोणको हमने अपना लिया तो हम अपनी सनातन संस्कृतिको खो बैठेंगे, जिसके लिये हमने असंख्य लोगोंका बलिदान दिया और भारत-विभाजनके समय अब भी उसके असंख्य-असंख्य ज्वलन्त उदाहरण प्रत्यक्ष देखनेको मिले।

गौका हम किसी भी प्रकार परित्याग नहीं कर सकते, गौ हमारे जीवनका एक अङ्ग है। गौको हमने अपने परिवारमें सम्मिलित कर लिया है। हमारे पूर्वजोंने गोरक्षाके लिये बड़े-बड़े बलिदान किये हैं जो सर्वत्र प्रसिद्ध है।

महाराज दिलीपने कामधेनुको भूलमें प्रणाम नहीं किया, इसी अनजाने अपराधके कारण उनके कोई संतान नहीं हुई। अपने गुरु वसिष्ठकी आज्ञासे उन्होंने गोसेवाका व्रत लिया। वे नित्य गौ चराने वनमें जाते और गौ जिधर भी जाती, उसके पीछे-पीछे फिरते। एक दिन एक सिंहने गौको धर दबाया। राजाने अपने धनुषपर बाण चढ़ाकर सिंहको मारना चाहा, किंतु राजाके हाथ ही न उठे। तब वे विवश हो गये। सिंहने हँसकर कहा—'राजन्! मैं कई दिनोंका भूखा हूँ, यह गौ मुझे आहाररूपमें मिली है। इसे खाकर मैं अपनी भूख शान्त करूँगा। तुम मेरा आहार क्यों छीन रहे हो?'

राजाने कहा—'सिंह! तुम्हें अपना पेट ही तो भरना है, तुम मुझे खा लो, गौको छोड़ दो।'

सिंहने कहा—'राजन्! मूर्खताकी बात मत करो। तुम्हारे शरीरसे लोकका बहुत उपकार होगा। तुम्हारे बिना देशमें अराजकता फैल जायगी। तुम्हारे वंशका नाश हो जायगा। आगे वंशपरम्परा न चलेगी। एक छोटी-सी गौके पीछे तुम संसारका इतना अहित कर रहे हो। अरे, अपने गुरुको एकके स्थानपर सहस्र गौ दे देना। जब तुम्हारा वंश ही नहीं चलता तो प्राण क्यों दे रहे हो?'

राजाने कहा—'सिंह! गौकी रक्षा मेरा धर्म है। धर्मके लिये प्राण दे देना मरना नहीं है, अमर होना है। अपने शरीरको देकर मैं अपने धर्मका पालन कर रहा हूँ।'

सिंहने अनेक तरहसे समझाया। राजा नहीं माने और अपनी आहुति देनेको गौके ऊपर गिर पड़े। वह तो उनके धर्मकी परीक्षा थी। वहाँ न तो सिंह था, न कोई और। नन्दिनी गौ उनकी ऐसी धर्मनिष्ठासे प्रसन्न हो गयी।

ऐसी एक नहीं गोरक्षाके लिये प्राण देनेकी ऐसी अनेक कथाएँ हैं।

एक ब्राह्मणकी गौओंको चोर चुराकर भागे जा रहे थे, ब्राह्मणने अर्जुनसे गौओंकी रक्षाकी पुकार की। अर्जुनका धनुष उस स्थानपर रक्खा था, जहाँ धर्मराज द्रौपदीके साथ एकान्तमें थे। वहाँ जानेपर अर्जुनको बारह वर्षका वनवास करना पड़ता; किंतु अर्जुनने उसकी तनिक भी परवा न की, वे निर्भीक होकर वहाँ गये। दस्युओंसे गौओंको छुड़ा लाये और फिर बारह वर्षोंतक वनवासके दुःखोंको सहते रहे।

मुसल्मानी कालसे गोवध आरम्भ हुआ। इसके पहले गौके वधकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। मुसल्मानोंने मांस या चर्मके लोभसे गोवध आरम्भ नहीं किया। केवल अपनी विजयके लिये तथा हिंदुओंको चिढ़ानेके लिये ऐसा किया था। वे सेनाओंके सम्मुख गौओंको कर देते थे। ऐसा कोई भी हिंदू नहीं था, जो किसी भी कारणसे गौओंका रक्त देख सके। गौओंके प्रति उनकी कितनी भारी निष्ठा थी। उन्होंने अपने राज्य छोड़ दिये, परिवारका परित्याग कर दिया, वे वन-वन भटकते रहे, किंतु उन्होंने गौओंपर बाण नहीं छोड़े। ऐसे राज्यवंशोंको मैं जानता हूँ, उनके किले मैंने देखे हैं, जो गौओंपर बाण न छोड़नेके कारण अपने भरे-पूरे राज्यको छोड़कर चले गये।

प्राचीन जितने भी राज्य थे, उनमें कानूनसे गोहत्या नरहत्याके सदृश ही मानी जाती थी। गोहत्यारेको प्राणदण्ड दिया जाता था। अभी-अभी १०-१२ वर्ष पूर्व जो ५००-६०० देशी राज्य सरदार पटेलने भारतमें विलीन किये, प्रायः उन सबमें कानूनसे गोहत्या बंद थी। यहाँतक कि मुस्लिमबहुल राज्य काश्मीरमें भी कोई गोहत्या भूलसे नहीं कर सकता था। गोहत्या करनेवालेको १० वर्षकी सजाका दण्ड था। वह कानून तो अबतक ज्यों-का-त्यों जम्मू-कश्मीरमें बना है। एक बार हाईकोर्टके एक जजने गोहत्यारेको १० वर्षकी सजाके स्थानपर ६ महीनेकी सजा कर दी थी, इसपर जम्मू-काश्मीरमें ऐसा प्रबल आन्दोलन हुआ कि शासक घबरा गये। उन दिनों मैं भी काश्मीरमें ही था। अन्तमें महाराजाको यह आश्वासन देना पड़ा कि आगेसे गोहत्या करनेवालेको १० वर्षकी ही सजा दी जायगी। नैपाल राज्यमें भी गोहत्या अबतक नरहत्याके समान ही मानी जाती है। किसी भी हिंदूराज्यमें आजसे १०-१५ वर्ष पूर्व गोहत्या नहीं होती थी।

महाराज छत्रपति शिवाजी गो-ब्राह्मणप्रतिपालक कहे जाते थे। महाराणा प्रताप, पंजाबकेशरी महाराणा रणजीतसिंह स्पष्ट कहते थे कि 'गौकी रक्षा ही हमारा एकमात्र धर्म है।' राणा रणजीतसिंहने तो अपने जीवनपर्यन्त अंग्रेजोंको पंजाबमें घुसने नहीं दिया। वे स्पष्ट कहते थे—'अंग्रेज गौका मांस खाते हैं। मेरी प्रजा गोमांस खानेसे घृणा करती है, पाप समझती है। अतः मेरे राज्यमें अंग्रेज नहीं घुस सकते।' यह पुरानी बात नहीं। लगभग १०० वर्षसे भी इधरकी बात है। छत्रपति शिवाजीने बाल्यकालमें ही १०-१२ वर्षकी अवस्थामें ही गौ ले जाते कसाईका हाथ काट दिया था।

अभी जब मैं जोधपुर गया, तो वहाँके एक विद्वान् पण्डितने मुझे एक बड़ी ही मार्मिक कथा जोधपुरके एक महाराजकी सुनायी। उस समय जोधपुरकी गद्दीपर एक १०-१२ वर्षकी अवस्थाके महाराजा राज्य करते थे। उनके पितामह भजन करने चले गये। पिताका देहान्त हो गया। अतः छोटे बच्चेको ही गद्दीपर बैठाया गया। मुसल्मानोंका समय था। उस समय मुसल्मान सरदार हजार-दो-हजार सैनिक लेकर घूमा करते थे और जिस राज्यको भी निर्बल देखते, उसीपर कब्जा कर लेते थे। एक सरदार बहुत बड़ी सेना लेकर जोधपुर राज्यमें भी पड़ा था। सरदारके सालेने एक साँड़को तलवारसे घायल कर दिया। प्रजाके लोग साँड़को लेकर दरबारमें आये। बालक महाराजने सरदारको संदेश भेजा जिसने साँड़को घायल किया है, उसे तुरंत मेरे पास भिजवाइये।

प्रधान मन्त्रीने बारंबार प्रार्थना की—'हुजूर! ऐसी आज्ञा न दें। वह सरदार बड़ा बली है, उसने राज्यपर चढ़ाई कर दी तो सब यही कहेंगे कि राजा बालक थे; पर प्रधान मन्त्री तो बूढ़ा था, उसने क्यों नहीं रोका?' किंतु महाराजने उनकी एक न सुनी, गरजकर कह दिया—'मैं हिंदू हूँ। गौकी रक्षा करना हिंदूका सर्वप्रथम कर्तव्य है। मेरे रहते कोई गौके पुत्रको घायल करे। मेरे प्राण चले जायँ, मेरा राज्य चला जाय, मैं गौको दुःख देनेवालेके जबतक प्राण न ले लूँगा, तबतक मानूँगा नहीं।'

प्रधान मन्त्री डर गया, किंतु राज-आज्ञाके सम्मुख करता ही क्या। सरदारने अपने सालेको इस आशासे दरबारमें भेजा कि महाराज उसे क्षमा कर देंगे; किंतु गौको क्लेश पहुँचानेवालेको हिंदू क्षमा करना जानते ही नहीं थे। महाराजने

उसे तोपके मुखसे उड़वा दिया। वह सरदार डरके कारण जोधपुर राज्यको छोड़कर अपनी सेनाके साथ चला गया। ऐसी थी हिंदू राजाओंमें गौके प्रति भक्ति!

नामधारी सिक्खोंने कसाईखानेको रातोंरात तोड़ दिया, सब गौएँ भगा दीं। गौओंके प्रति नामधारी सिक्खोंने कितने बलिदान किये। उन्हें तोपके मुखसे उड़ा दिया गया। वे हँसते-हँसते गाते-बजाते तोपके सम्मुख खड़े हो गये। एक छोटा बच्चा था। अंग्रेज फौजी अफसरने बहुत कहा—'तुम भाग जाओ, तुम बहुत छोटे हो, तोपका गोला तुम्हारे लग नहीं सकता।' वह पुरुषसिंह पत्थर उठा लाया और उसपर खड़ा होकर बोला, मैं अब तो छोटा नहीं, अब गोला मारो। तोप दागी गयी और वह गोमाताकी जय बोलता हुआ परलोक प्रयाण कर गया।

गोरक्षाकी अपनी माँगको हमने कभी भी नहीं छोड़ा। साधु-संत-महंतोंकी बात तो छोड़ो, जितने भी राष्ट्रीय नेता हुए हैं—लोकमान्य तिलक, गोखले, महात्मा गाँधी, पं० मालवीयजी, मोतीलालजी नेहरू—सबने गोरक्षाका समर्थन किया है और उसके लिये आन्दोलन भी किये हैं। लोकमान्य तिलक तो कहा करते थे—'स्वराज्य होते ही हम कलमकी एक नोकसे एक मिनटमें गो-हत्या बंद कर देंगे।' महात्मा गाँधीजी कहा करते थे—'मैं गोरक्षाको स्वराज्यसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण समझता हूँ।' खिलाफत-आन्दोलनमें सम्मिलित होते समय उन्होंने स्पष्ट कहा—'खिलाफतका प्रश्न मुसल्मानोंका धार्मिक प्रश्न है, मैं इसीलिये इसमें सम्मिलित हुआ कि मुसल्मान भाई मेरी गौकी रक्षा करेंगे।'

पं० मोतीलालजी नेहरूसे किसीने पूछा था—'पण्डितजी! क्या आप गोमांस खा सकते हैं?' उन्होंने मीठी चुटकी लेते हुए हँसीके लहजेमें बड़े मजेसे कहा—'भाई! गौका मांस तो मैं नहीं खा सकता, मगर गौका मांस खानेवालोंके मांसको मैं बड़े मजेसे खा सकता हूँ।'

सन् २१ में जब हम असहयोग-आन्दोलनमें कार्य करते थे, उन दिनों देशभक्तोंकी तीन ही पहचान थी—(१) खादी पहिनना, चरखा चलना। (२) हिंदी भाषाका व्यवहार और प्रचार तथा (३) गोरक्षा करना। उन दिनों मुसल्मानोंने भी गोमांस खाना तथा गौकी कुरबानी करना बंद कर दिया था। अनेक बड़े-बड़े मौलवियोंने फतवे दिये थे कि गौकी कुरबानी करना मुसल्मानोंके लिये लाजमी नहीं है। जितनी गोशालाएँ थीं, उनके सभापति-मन्त्री तथा अन्य पदाधिकारी प्रायः कांग्रेसी ही होते थे। देहलीके पाटोदिया-हाउसमें कांग्रेसियोंकी एक सभा हुई, जिसमें अब्दुल कलाम आजाद, पं० मोतीलाल नेहरू, पं० नेकीराम शर्मा तथा सभी कांग्रेसी नेता थे, उसमें एक प्रस्ताव पास हुआ कि 'अंग्रेजी राज्यमें गोवध होता है, अतः अंग्रेजोंका साथ नहीं देना चाहिये।'

कांग्रेसके ऐसे रुखको देखकर हम सब लोगोंको यह पूरा विश्वास हो गया था कि स्वराज्य होते ही सबसे पहला कानून गोहत्याबंदीका ही बनेगा। भगवान्की कृपासे वह दिन भी आया जब अंग्रेज इस देशको छोड़कर जाने लगे। उस समय सम्पूर्ण देशने यह माँग की कि सर्वप्रथम गोरक्षाका ही कानून बने, जिस दिन स्वराज्यकी घोषणा हो इसके साथ ही गोहत्याबंदीकी घोषणा हो। इसके लिये सम्पूर्ण देशभरसे विधानसभाके अध्यक्ष डा० राजेन्द्रप्रसादजीके पास इतने तार और पत्र भेजे गये कि उनकी गणना करना भी असम्भव हो गया, केवल तौलकर ही उनका अनुमान लगाया गया। भारतके विधानमें भी गोरक्षाको राज्यकी प्रधान नीति और मुख्य कर्तव्य स्वीकार किया गया। उस समय स्वराज्य होते ही गोरक्षाकी घोषणा तो नहीं की गयी; किंतु इसके लिये एक कमेटी बना दी गयी। कमेटीने अपने प्रतिवेदनमें स्पष्ट कहा—'जबतक पूर्ण गोवधबंदी न होगी तबतक भारतकी आत्माको शान्ति न होगी।'

इन आश्वासनोंसे हम पूर्ण आश्वस्त थे कि चाहे देर भले ही हो, हमारी सरकारने जब गोरक्षाको राज्यकी नीति घोषित कर दिया है तो शीघ्र ही कानून बन जायगा। स्वराज्य होते ही मध्यप्रदेश-सरकारने तो अपने यहाँ सम्पूर्ण गो-हत्या-बंदीका कानून बना ही दिया; किंतु केन्द्रने उन्हें कोई उत्साह प्रदान नहीं किया।

सरकार ज्यों-ज्यों इस कानून बनानेमें देरी करने लगी, त्यों-ही-त्यों जनताको संदेह बढ़ने लगा। स्वराज्य होनेके दो-तीन वर्षतक तो हम सरकारकी प्रतीक्षामें ही बैठे रहे। जब समझा कि सरकार जान-बूझकर इस प्रश्नको टाल रही है, तब जनताकी ओरसे आवाज उठायी गयी। स्वामीजी श्रीकरपात्री-जीने आन्दोलन किया। राष्ट्रीय स्वयंसेवकसंघने भी सम्पूर्ण देशमें हस्ताक्षर-आन्दोलन आरम्भ किया और इतने अधिक हस्ताक्षर कराये कि संसारमें स्यात् ही किसी आन्दोलनपर

हस्ताक्षर हुए हों। तब स्वर्गीय नेहरूने यह कहकर इस प्रश्नको टाल दिया कि यह प्रश्न केन्द्रका नहीं है। प्रान्तीय सरकारें चाहें तो अपने यहाँ कानून बना सकती हैं। तब हमने पृथक्-पृथक् प्रान्तोंमें प्रयत्न करना आरम्भ किया। पहले कुम्भके अवसरपर लाला हरदेवसहायजीके प्रयत्नसे सर्व-दलीय गोहत्यानिरोध-समिति बनायी गयी। इसका एक शिष्ट-मण्डल प्रयागमें तत्कालीन प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरूसे मिला, जिसमें प्रो० राजेन्द्रप्रसाद, लाला हरदेवसहाय, भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दार तथा कई साधु-संत भी थे। नेहरूजी-ने कहा—'अच्छा, मैं विचार करूँगा।' वहाँ उन्होंने यह भी कहा कि 'आपलोग तो ऐसा प्रचार करते हैं कि मैं गो-मांस खाता भी हूँ।'

हमारी ओरसे कहा गया कि हमलोगोंने तो ऐसा प्रचार कभी किया नहीं। यदि आपको गो-मांससे घृणा है तो गो-वध बंद कीजिये।

गोहत्या-निरोध-समितिकी ओरसे उत्तरप्रदेश-विधान-सभाके सामने सत्याग्रह किया गया और उस समय स्वर्गीय श्रीपंतजीने भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दारको वचन दिया था कि गोवधबंदीका कानून उत्तरप्रदेशमें बन जायगा और वहाँ कानून बन गया; किंतु केन्द्रमें कोई कसाइयोंका ऐसा गुप्तचर बैठा था कि वह कसाइयोंकी वकालत करता, उनका प्रबल पक्ष लेता। कसाइयों-को गोहत्यासे करोड़ों-अरबोंकी आमदनी होती है। कसाइयों-को अधिक आय जवान गौओंके काटनेसे होती है। बूढ़ी ठाँठ गौमें मांस अधिक नहीं होता, उनसे उन्हें कुछ मिलता नहीं। जवान गौओंके काटनेसे उन्हें अत्यधिक आय है। मान लो हरियानाकी एक पहले या दूसरे ब्यानकी गौ, जो १५, १६ सेर दूध देती है, एक व्यापारीने उसे ६००) में खरीदा। कलकत्ते जाकर वह ग्वालाको ८००) में बेंच आया। ये व्यापारी भी प्रायः कसाई ही होते हैं और इन्हें रुपया उधार हमारे हिंदू भाई ही देते हैं। १००) ले जानेका व्यय रख लो तो एक गौपर १००) तो व्यापारीको लाभ हो गया। ग्वालाने उस गौको ६ महीने अपने यहाँ रक्खा। उसके बच्चे-को दूध नहीं देते, अतः वह दो-चार दिनमें मर जाता है। बहुत-सी गौएँ बिना बच्चेके भी दूध देती हैं। जो नहीं देतीं, उनके लिये मरे बच्चेकी खालमें भूसा भरकर उससे गौको पुहनाते हैं। एक गौ १५ सेर भी दूध दे और १) सेर ही दूध बिका तो १५) का रोज दूध हुआ। ५) रोज एक गौका भोजन रख लो तो १०) रोज उसे बचते हैं। ६ महीने-में १८००) उसे बच गये। ८००) की गौ खरीदी थी। एक हजार रुपये उसे ६ महीनेमें लाभ हो गये। ग्वाला गौको ग्याभन नहीं होने देता। ग्याभन होनेपर दूध कम देगी और ९ महीने उसे रक्खे कहाँ, खिलावें कैसे। मैंने स्वयं जाकर देखा है कि ग्वालोंके पास गौओंके बैठनेतककी जगह नहीं। गौ बड़े कष्टसे बैठ सकती हैं। ६ महीने पश्चात् ग्वाला उस ८००) की गौको २००) या ३००) में कसाईके हाथ बेच देता है। कसाई उसे तुरंत काट देता है। उसका मांस बिकता है, खाल बिकती है, हड्डी, खून, आँत सींग, खुर सभी बिकते हैं। तत्काल उसे २००) के ४००) मिल जाते हैं। इस प्रकार एक गौपर एक दिनमें उसे १५०) २००) मिल जाते हैं। कितनी भारी आमदनीका व्यापार है। उसे तो एक दिनमें एक गौसे २००) मिलते हैं; किंतु आप सोचें हमारी हानि कितनी हुई। वह गौ, जो कम-से-कम १५ बच्चे देती, १५ वर्षोंमें १५०-२०० मन दूध देती। वह कसाईकी इस आमदनीसे बरबाद हो गयी। यही कारण है कि अब हरियानेसे दुधारू गौओंकी नस्ल ही नष्टप्राय हो गयी। गत वर्ष मैं नामधारी सिक्खोंके गुरुद्वारे मैंणी साहबमें गया। उनके यहाँ तो मैंने २०, ३०, ३५ सेरकी गौएँ देखीं। किंतु पंजाबमें अब १५, २० सेरकी गौएँ नहीं मिलतीं। मिलती भी हैं तो बहुत कम। बम्बई-कलकत्तामें जाकर वे प्रायः सब ही कट गयीं। यदि अब भी हम न सँभले, अब भी गोहत्यापर पूर्ण प्रतिबन्ध न लगा तो गोवंश नष्ट ही हो जायगा। कसाइयोंको जवान गौओंके वधसे करोड़ोंकी आय है। वे नहीं चाहते कि गोवध बंद हो। अतः वे अनाप-शनाप रुपये व्यय करके ऐसी अड़चनें डाल देते हैं कि अबतक पूर्ण गोवध-बंदीका कानून बनने नहीं पाया। केन्द्रीय मन्त्रियोंमेंसे कोई-न-कोई प्रभावशाली मन्त्री कसाइयोंका ऐसा एजेंट होता है कि वह कानूनी अड़चनें उपस्थित करके पचासों विकल्प खड़े कर देता है। कोई कहे तो मैं इसके अनेकों प्रमाण दे सकता हूँ। हमने उत्तरप्रदेश, विहार आदिमें जाकर सत्याग्रह किये, कानून बनवाये। पंजाब, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, विहार, गुजरात आदि प्रान्तोंमें कानून बने, किंतु केन्द्रके गुप्तचरोंने उन सब कानूनोंको लँगड़ा बना दिया। पहिले तो केन्द्रने उन कानूनोंको लागू ही नहीं होने दिया। अनेकों वर्ष वे फाइलें

ही पड़ी रहीं । जब बहुत कहने-सुननेपर लागू भी किये, तब मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश तथा बिहारके कसाइयोंने सर्वोच्च न्यायालयमें अपील कर दी । अपीलके बीचमें हम आन्दोलन नहीं कर सकते । कई वर्षोंके पश्चात् सर्वोच्च न्यायालयने निर्णय दिया कि ये कानून गलत हैं । बैलोंके वधपर रोक नहीं होनी चाहिये । कानूनोंमें पुनः संशोधन हुए । जहाँ बैलोंका वध बंद था, वहाँ कानूनसे फिर होने लगा । केन्द्रकी ओरसे पग-पगपर रोड़े अटकाये गये । मुकद्दमेमें ऐसे-ऐसे आँकड़े पेश किये गये, जो सरकारी फाइलोंके अतिरिक्त कहीं मिल नहीं सकते । कसाइयोंकी कभी हिम्मत पड़ ही नहीं सकती कि वे जनताकी भावनाके विरुद्ध अपील करते यदि उन्हें केन्द्रकी ओरसे सह न मिली होती ।

इस प्रकार इतने दिनोंका किया-कराया परिश्रम सब बेकार हो गया ।

प्रायः सभी कमीशनोंने, जो सरकारकी ओरसे नियुक्त किये गये थे, सर्वसम्मतिसे गोवध-बंदीकी शिफारिश की । जब कमीशनोंसे सरकारकी इच्छापूर्ति नहीं हुई तब केन्द्रकी ओरसे अमेरिका आदिसे विशेषज्ञ बुलाये गये । उन्होंने कहा—'भारतमें बहुत-सी गौएँ बेकार हैं, अनुपयोगी हैं, उन्हें या तो मारकर खा जाना चाहिये या पड़ोसी राज्योंमें भेज देना चाहिये; क्योंकि ये अनुपयोगी गौएँ दूध देनेवाली गौओंके चारेको खा जाती हैं ।'

उन बुद्धिके शत्रु विदेशी विशेषज्ञोंसे कौन पूछे कि जो गोबरके रूपमें पर्याप्त खाद देती है, जो केवल जंगलोंमें उस तृणको चरकर रहती है, जिसे कोई संग्रह नहीं कर सकता, जो व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है । बिना दूध देनेवाली गौओंको कोई दाना, भूसी, खल, ज्वार आदि पौष्टिक पदार्थ नहीं देता । ऐसी बूढ़ी दूध न देनेवाली गौओंको मारकर तुम कौन-सा लाभ उठा लोगे । मरते समय वह अपना चमड़ा तो छोड़ ही जाती है । ऐसे ही विशेषज्ञोंका विरोध करते हुए भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादने कहा था—'हिंदुस्तानमें गायोंके लिये इस तरहकी धार्मिक भावना है कि उन्हें मारना लोग पसंद नहीं कर सकते । इसलिये यह जो बहादुरीकी सलाह दी जाती है कि जितने खराब जानवर हैं, उनको कत्ल कर दिया जाय, मैं समझता हूँ, इसमें बहादुरी है, बुद्धि नहीं । यदि हम इस कामको करना चाहेंगे तो सुधार तो नहीं होगा, उलटे हम अपने खिलाफ एक जमात पैदा कर लेंगे, जो हमारा विरोध करेगी ।'

'मेरे कहनेका अभिप्राय यही है कि सरकार भाँति-भाँतिके बहाने बनाकर इस प्रश्नको टालती ही गयी । मान लो कुछ प्रान्तोंमें कानून बन भी गये तो गौ लखनऊमें न मरकर कलकत्ते-बंबई जाकर मरेंगी । अनुपयोगीका तो नाम है, मारी जाती हैं उपयोगी ही गौएँ ।'

जब हमने देखा केन्द्रीय सरकार दृढ़तासे कसाइयोंका पक्ष ले रही है और हमारे समस्त प्रयत्नोंको विफल बनानेपर उतारू है तो क्या करें । आजसे १३, १४ वर्ष पूर्व जब हम गोहत्यानिरोध-समिति बना रहे थे तब एक साधुने सभामें कहा था—'यदि ब्रह्मचारीजी और करपात्रीजी—ये दो आदमी गौओंके नामपर प्राण दे दें, तो आज गोहत्या बंद हो जाय ।' उस समय तो यह बात हँसीमें टल गयी; किंतु पीछे मैंने सोचा—'मेरे प्राण देनेसे गोहत्या बंद होती है, तो मैं प्राण क्यों न दे दूँ ।'

इस विचारके आनेपर मैंने अपने पाँच-सात सम्माननीय बन्धुओंसे सम्मति की, यदि मुझमें इतना गोप्रेम होता कि एक-एक क्षण भी गोहत्या मेरे लिये असह्य हो जाती, तब तो सम्मति आदिकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती । गो-प्रेमकी न्यूनतासे, प्राणोंके मोहसे, सार्वजनिक प्रश्न होनेसे मैंने अपनेसे अधिक अनुभवी और विद्वानोंसे सम्मति लेनी आवश्यक समझा । यह सब मैंने देख लिया है कि यह काम अशास्त्रीय तो नहीं है । यद्यपि यह बात मैंने न तो किसी समाचार-पत्रमें छपायी, न सर्वसाधारणमें इसे प्रकट ही किया; क्योंकि जिस प्रकार मैं वाणीपर संयम रखनेका प्रयत्न करता हूँ उसी प्रकार लेखनीका संयम रखनेकी चेष्टा करता हूँ । कोई बात असत्य बनावटी न निकल जाय । इसका पालन कहाँतक होता है इसे सर्वान्तर्यामी प्रभु ही जानें । हाँ, तो बहुत गुप्त रखनेपर भी बात फैल-सी गयी । बलियामें एक संतने राजर्षि टण्डनसे भी कह दी । वे सुनते ही मेरे पास हूँसी दौड़े आये । उस समय मैं नित्यका कीर्तन कर रहा था । टण्डनजीने मेरे एक साथीसे पूछा 'ब्रह्मचारीजीका शरीर ठीक है न?' उन्होंने कहा 'हाँ ठीक है ।' फिर उन्होंने पूछा 'उनकी बुद्धि ठीक है न' इसका वे क्या उत्तर देते ? कीर्तन करके जब मैं निवृत्त हुआ तो वे हँसते हुए बोले 'मैंने पूछा था तुम्हारी

बुद्धि ठीक है न ? मेरे प्रश्नका अभिप्राय तुम समझ ही गये होगे ?'

मैंने पूछा—'मैंने बुद्धिहीनताकी कौन-सी बात कर डाली है ?' वे आवेशमें आकर बोले—'यह कायरताका काम है। आप-जैसे उत्साही व्यक्तिको यह अनशन आदि शोभा नहीं देता। जनमतको जाग्रत् करके गोरक्षा करो। यह जो आप आत्महत्या—बलिदान करना चाहते हो उस शक्तिको दूसरी ओर लगाओ।' यह कहकर उन्होंने गीताका यह श्लोक पढ़ा—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥

मैंने कहा—'बाबूजी! आपको तो काँग्रेसका मोह हो गया है। मैं कोई अशास्त्रीय बात तो कर नहीं रहा हूँ। हमलोगोंके लिये तो अनशन करनेका, धरना देनेका शास्त्रीय विधान है। चित्रकूटमें भरतजी जब श्रीरामचन्द्रजीको लौटाने गये और जब श्रीरामचन्द्रजी किसी भी प्रकार अवध लौटनेको उद्यत न हुए तो भरतजीने शत्रुघ्नजीसे कहा—'शत्रुघ्न! तुम चटाई ले आओ, मैं आर्यपुत्रके सामने बिना खाये अनशन करके धरना दूँगा।' यह सुनकर शत्रुघ्नजी संकोचमें पड़ गये। वे श्रीरामचन्द्रजीका मुँह देखने लगे। भरतजीने जब देखा कि शत्रुघ्न कुशकी चटाई नहीं ला रहे हैं तो वे स्वयं उठे और कुशकी चटाई बिछाकर अनशन करने बैठ गये।'

''इसपर श्रीरामचन्द्रजीने बड़े स्नेहसे भरतजीसे कहा—'भरत! मैं कौन-सा अन्याय कार्य कर रहा हूँ जिसके लिये तुम अनशन करने जा रहे हो ? फिर मूर्धाभिषिक्त राजाओंके लिये तो अनशन करनेका विधान भी नहीं है। हाँ, ब्राह्मण बिना खाये-पिये एक करवट लेटकर मनुष्योंको अन्यायसे रोकनेके लिये अनशन किया करते हैं। यह तो शास्त्रीय विधान है।

ब्राह्मणो ह्येकपार्श्वेन नरान् रोद्धुमिहार्हति।
न तु मूर्धाभिषिक्तानां विधिः प्रत्युपवेशने ॥

''इस प्रकार मैं कोई अनार्यजुष्ट, अस्वर्ग्य तथा अकीर्तिकर कार्य नहीं कर रहा हूँ। आप इसे आत्महत्या बता रहे हैं।''

उन्होंने हँसकर कहा—'हाँ भाई, होगा; किंतु यह सबसे अन्तिम उपाय है। आत्महत्या तो मेरे मुखसे निकल गयी, इसीलिये पीछे बलिदान कहा—किंतु इसका अभी समय नहीं। मुझे काँग्रेससे कोई मोह नहीं। इसका नाम भी विदेशी है। और स्वराज्य मिल जानेपर अब इसकी आवश्यकता भी नहीं। कार्य बहुत समझ-बूझकर करना चाहिये, इस प्रकार जैसे बड़े-बूढ़े नेता समझाते हैं, बहुत देरतक समझाते रहे।'

इस प्रकार राष्ट्रीय स्वयं-सेवक-संघके सरसंघचालकजी गुरुजी गोलवलकरने भी बहुत बल देकर कहा—'देखो, अभी ऐसा साहस मत करो। यदि प्राण देनेसे गोरक्षा होती हो तो सबसे पहले मैं तैयार हूँ। समय आयेगा तब बतायेंगे।'

'कल्याण'-सम्पादक भाईजी श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजीसे भी मैंने सम्मति ली। उन्होंने मुझे तुरंत तार दिया—'अभी शीघ्रता न करें।' उन्होंने तुरंत तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजीको पत्र लिखा। श्रीराजेन्द्रप्रसादजी भाईजीसे बड़ा स्नेह रखते थे। उनका उसी समय बड़ा लम्बा पत्र आया। वह पत्र उन्होंने राष्ट्रपतिकी हैसियतसे लिखा था, वैसे राजेन्द्रबाबू गोरक्षाके प्रबल पक्षपाती थे, कई गोरक्षा-सम्मेलनोंके वे सभापति बने और उन्होंने सरकारकी गोहत्या बंद न करनेपर बड़ी भर्त्सना की। भाईजी बताते थे कि एक बार श्रीराजेन्द्रबाबूने कहा था—'यदि मेरा वश चले तो इन सब सिनेमाओंको बंद कर दूँ।' कुछ दिनों बाद सिनेमाओंकी तारिकाओंके सङ्गमें उनका चित्र छपा। तब भाईजीने उनसे पूछा—'आप तो सिनेमा बंद करनेकी बात करते थे, सिनेमातारिकाओंके साथ चित्र क्यों छपाया ?' इसके बाद मिलनेपर उन्होंने हँसकर कहा—'मेरे दो रूप हैं—एक राजेन्द्रप्रसाद, दूसरा राष्ट्रपति। चित्र राष्ट्रपतिका है। मन्तव्य राजेन्द्रप्रसादका।' इसी प्रकार यह पत्र राष्ट्रपतिका है केन्द्रकी नीतिके अनुरूप है। उस पत्रकी प्रतिलिपि मैं यहाँ अविकल उद्धृत करता हूँ।

डा० श्रीराजेन्द्रप्रसादजीके पत्रकी प्रतिलिपि
राष्ट्रपतिभवन, नई दिल्ली २४ जनवरी १९५३।

प्रिय श्रीहनुमानप्रसादजी,

आपका २१-१-५३ का पत्र मिला और उसके साथ ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजीके पत्रका उद्धरण भी मैंने पढ़ा। गोसेवा और गोरक्षाकी बात इस समय देशमें बहुत चल रही है और इस विषयमें बहुत बातोंमें काफी प्रगति भी हुई है। गो-संवर्धनकी बात तो सभी लोग मान गये हैं और उसके लिये जो कुछ होना चाहिये उसका समर्थन भी लोग करते हैं। गोवधके सम्बन्धमें क़ानूनसे यहाँतक मामला पहुँच गया है कि अधिकांश स्थानोंमें ऐसे वंशका वध नहीं हो सकता जो कामके लायक हों। अर्थात् बैल जो अपना काम करने

योग्य हों। कई जगहोंमें यह कानूनी तौरसे पास हो चुका है कि गोवध एकबारगी बंद हो।

इसके लिये आन्दोलन भी काफी चल रहा है। ऐसी अवस्थामें ब्रह्मचारीजीका अनशन अनावश्यक प्रतीत होता है। अगर विचार-स्थितिका विश्लेषण किया जाय तो गोवधका मुख्य कारण भी मालूम हो सकता है। धार्मिक कृत्यके तौरपर जो गोवध होता है वह सालमें एक दिन होता है और वह भी बहुत बड़े पैमानेपर नहीं होता। जो वध प्रतिदिन होता है वह आर्थिक कारणोंसे होता है। जितने गो-वंश कसाई-खानोंमें जाते हैं, उनमेंसे अगर एक-एकका पता लगाया जाय तो मालूम हो जायेगा कि उनमेंसे अधिकांश हिंदुओंके घरसे ही जाते हैं। यदि उन्हें रखकर खिलाना-पिलाना असम्भव हो जाता है और बेचनेसे कुछ पैसे मिल जाते हैं जिनकी भूखे गरीबोंको हमेशा ही आवश्यकता रहती है तो हिंदू भी कोई-न-कोई बहाना निकालकर आँख बंद करके गो-वंशको हत्यारेके हवाले कर देते हैं। बाजारों और मेलोंमें जितने जानवर बिकते हैं उनको जाकर देखा जाय तो जो मैं कह रहा हूँ उसका पूरा प्रमाण मिल जायगा। यदि कानून-द्वारा गो-वध बंद कर दिया जाय तो उससे वास्तविकतामें गो-वध बंद नहीं होगा; क्योंकि उसका मूलभूत कारण अपनी जगहपर काम करता ही रहेगा। जब कोई कसाईके हाथ नहीं बेच सकेगा और अपने घरमें गोवंशको पाल भी न सकेगा तो वह उसको यों ही छोड़ देगा और जैसा अक्सर देखा जाता है। इस तरह गोवंशकी रक्षा करनेवाले उनको मारेंगे तो नहीं, मगर वे खानाबगैर मौतके घाट उतर जायँगे। जहाँ कहीं अकाल पड़ता है वहाँ यह दृश्य देखनेमें बहुत आता है। पर जहाँ अकाल नहीं भी हो, वहाँ भी आजकलकी महँगी और कठिनाईके दिनोंमें बहुतेरे लोग जो पालनेकी शक्ति नहीं रखते और साथ ही वधिकके हाथ बेचना भी। यों ही जानवरोंको अपने गाँव या घरसे कुछ दूर ले जाकर, जहाँ लोग पहिचान न सकें कि वे किसके जानवर हैं, छोड़ देते हैं। मैंने भी देखा है कि इस तरहके वे बहुतेरे जानवर गाँवोंमें फिरते हैं और खाद्यपदार्थोंके बदले केवल मार खाते रहते हैं। यदि गो-वंशकी रक्षा उद्देश्य है तो इस कारणको किसी-न-किसी तरहसे दूर करना चाहिये और मेरे विचारमें यह सच्ची गोसेवा और गोरक्षा होगी। मैं चाहता हूँ कि इस विषयमें केवल भावुकतासे काम न लेकर बल्कि विवेकसे काम लेना चाहिये और आप उनसे मेरा आग्रह करके कहें कि जो कठिन मत वे उठाना चाहते हैं उससे भी काम सिद्ध न होगा।

अगर कानूनसे बंद कर दिया जाय तो जैसा मैंने ऊपर बताया है दूसरे कारणोंसे गो-वध बंद नहीं होगा। यद्यपि छुरीसे गला काटकर क्षणमें उसका प्राणान्त न किया जायगा पर महीनों भूखा रखकर शनैः-शनैः हम उनको मारेंगे। इसलिये यदि मेरी राय आप जानना चाहें तो मैं यही कहूँगा कि आप और ब्रह्मचारीजी अपनी सब शक्ति लगाकर, विशेष करके हिंदुओंमें इस बातका प्रचार करें कि वे गायकी सच्ची सेवा करें, केवल दिखानेवाली सेवा नहीं और आँख बचाकर गो-वध हो या कराया जाय तो उससे ही संतोष मानें। मैंने सुना है कि गाँवोंमें यह प्रथा प्रचलित है कि जब गायवाला गाय बेचना चाहता है तो खरीददारको उसका पगहा पकड़ा देता है। बाजारों और मेलोंमें कसाईके हाथमें पगहा नहीं पकड़ाता, बल्कि पगहा जमीनपर डाल देता है और उसी तरहसे कसाई भी रुपये उसके हाथमें न देकर जमीनपर रख देता है जिसे बेचनेवाला उठा लेता है और कसाई पगहा उठा लेता है। इस तरहकी भावनासे ही हम संतोष मान लेते हैं, यह हितकर नहीं है। इसीलिये मैं समझता हूँ कि वैसे कारणको दूर करनेमें बहुत काम करना है। यदि उसमें ब्रह्मचारीजी अपना समय और शक्ति लगावें तो ठीक गो-सेवा कर सकते हैं।

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार
गीताप्रेस गोरखपुर

आपका—
राजेन्द्रप्रसाद

इस पत्रका छोटा-सा उत्तर जो भाईजी (हनुमान-प्रसाद पोद्दार) ने उनको लिखा, उसकी प्रतिलिपि भी नीचे दी जाती है—

गीताप्रेस, गोरखपुर
३० जनवरी १९५३

परम सम्मान्य और प्रिय श्रीबाबूजी !

सादर नमस्कार।

आपका २४ जनवरीका कृपापत्र मिला। आपने कृपापूर्वक मेरे पत्रका तत्काल स्वयं लम्बा पत्र लिखकर उत्तर दिया, इसके लिये मैं आपका कृतज्ञ हूँ। मेरे प्रति चिरकालसे आपकी जो अहैतुकी प्रीति, शुद्ध सद्भावना तथा आत्मीयता है, इसके लिये मैं आपका सदा ही ऋणी हूँ। आपका संदेश मैं श्रीब्रह्मचारीजी महाराजके पास भेज रहा हूँ। वे क्या करेंगे, इसका निश्चित तो

पता नहीं है, पर आशा है वे फिलहाल आपकी बात मान लेंगे।

आपने पत्रमें जो कुछ विचार प्रकट किये हैं, वे सर्वथा स्तुत्य और विचारणीय हैं एवं उनके अनुसार गोसंवर्धन, नस्ल-सुधार, गोसेवा होनी ही चाहिये। लोग छलसे स्वार्थवश कसाईके हाथ पगहा नहीं पकड़ाते और कसाई भी रुपये जमीनपर रख देता है—इस प्रकार कपटसे आँख बचाकर गोवध हो या कराया जाय, इसमें संतोष माननेकी तो कल्पना ही नहीं है। यह तो प्रत्यक्ष गोहत्या है—महापाप है। यह बंद होनी ही चाहिये।

परंतु साथ ही कानूनन सर्वथा गोवध बंद भी होना ही चाहिये। इसके बिना अच्छी गायोंका कटना बंद नहीं होगा। आपसे कई बार पहले भी बात हो चुकी है और आपने इस बातको स्पष्टरूपसे स्वीकार किया था। किंतु आप आवश्यकतासे अधिक साधु हैं। इसलिये स्पष्टवादी होनेपर भी कहीं-कहीं मित्रों तथा साथियोंके मनके विरुद्ध या सरकारकी नीतिके विपरीत कोई बात कहनेमें हिचक जाते हैं। अतएव मेरी यह विनीत प्रार्थना है कि अब आपको साहसके साथ अपने मनकी बात स्पष्ट कह देनी चाहिये कि 'सरकारको कानूनन सर्वथा गोवध बंद करना होगा।' और इसके लिये उचित प्रयत्न भी करना चाहिये।

आशा है मेरी प्रार्थनापर आप ध्यान देंगे और मैं धृष्टतापूर्ण जो शब्द लिख गया हूँ—यद्यपि आप जानते हैं कि ये सत्य हैं—उसके लिये मुझे कृपया क्षमा करेंगे।

आप स्वस्थ और सानन्द होंगे। शेष भगवत्कृपा।

विनीत

हनुमानप्रसाद पोद्दार

गौओंकी रक्षा हो, गोवंशका संवर्धन हो, नस्ल सुधारी जायँ, गौएँ कसाइयोंके हाथ न बेची जायँ—इसमें किसीका भी मतभेद नहीं, किंतु जबतक सम्पूर्ण भारतवर्षमें कानूनसे गोवध बंद न हो तबतक अच्छी गौएँ बच नहीं सकतीं। कसाई अपने लोभवश अच्छी-से-अच्छी गौओंको काटेंगे, ग्वाले लोभवश जवान गौओंको बेचेंगे, महाजन लोभवश क़साइयोंको कर्ज देंगे और कसाइयोंके एजेंट लोभवश शक्तिभर केन्द्रसे कानून न बनने देंगे। हमारी सरकार हिंदुओंके बहुत अनुकूल नहीं। उसे मुसल्मानोंके वोटोंका भरोसा है, हिंदुओंमें एकता नहीं। उनमेंसे बहुतसे लोभवश गोहत्याकी समर्थक कांग्रेसी सरकारको वोट देंगे ही। यदि समस्त हिंदू निश्चय कर लें कि हम गोरक्षाके समर्थकको ही वोट देंगे तो सरकार तो आज गोहत्या बंद कर दे। किंतु मैंने तो चुनाव लड़कर देख लिया है, अपनी इच्छासे तो कोई विरला ही वोट देता है। कोई सरकारके भयसे, कोई जातिके दबावसे, कोई दलके कारणसे तो कोई लोभसे वोट देते हैं। अतः गोरक्षाके आधारपर चुनाव लड़नेसे हम जीत नहीं सकते। सरकार यदि दृढ़तासे निश्चय कर ले तब तो कोई कुछ कर ही नहीं सकता। कुछ स्वार्थी कसाइयोंको छोड़कर मुसल्मानोंमें भी बहुतसे लोग ऐसे हैं जो गोहत्या नहीं चाहते। यदि हम सरकारको विवश कर सकें तो उसे सम्पूर्ण देशमें गोहत्या-बंदीका कानून बनाना ही पड़ेगा। गतवर्ष हमने श्रीवृन्दावनधाममें रहकर एक वर्षका गोसेवाव्रत किया था। भारत-गोसेवक-समाजके सहयोगसे हमने वहाँ अखिल भारतवर्षीय स्तरपर दो गोरक्षा-सम्मेलन किये। एक तो व्रतके आरम्भमें सेठ गजाधरजी सोमाणीके सभापतित्वमें खास श्रीधाम वृन्दावनमें ही, दूसरा गोसेवाव्रतकी परिसमाप्तिपर 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ'के सरसंघ चालक श्रीगुरुजी श्रीगोलवलकरके सभापतित्वमें अपने यमुनापारके गोलोकमें। दोनों ही सम्मेलनोंमें गत गोपाष्टमीसे गोरक्षाके लिये प्रबल आन्दोलनकी, सदस्य बनाने तथा धन एकत्रित करनेकी बात कही थी; किंतु उसी समय देशमें पाकिस्तानका आक्रमण आरम्भ हो गया। ऐसे समय आन्दोलन आरम्भ करना अनुचित प्रतीत हुआ। गत कुम्भके पश्चात् हमारे कुछ साधुओंने पदयात्रा की और दिल्लीमें संसद्के सम्मुख धरना तथा अनशन आरम्भ किया। वे २०-२२ साधु पिछले दिनोंतक दिल्लीकी तिहाड़ जेलमें बंद थे। अनशन कर रहे थे। जेलकी ओरसे उन्हें जबरन दूध पिलाया जाता था।

हम सोचते हैं, जबतक कुछ लोग अपने प्राणोंका बलिदान न करेंगे, तबतक यह सरकार पसीजेगी नहीं। कुछ लोगोंने मुझे लिखा है—आप अहिंसा और अनशनकी बातें व्यर्थ करते हैं, इससे काम चलनेका नहीं, सरकार तो मार-धाड़ और तोड़-फोड़के आन्दोलनोंसे झुकती है। आप सामूहिक रूपसे गोहत्यारोंकी हत्या कराइये, तोड़-फोड़ कीजिये। आप केवल हमारा नेतृत्व करें, करनेके लिये तो हमलोग तैयार हैं।

ऐसे भाइयोंको मैं स्पष्ट बता देना चाहता हूँ, यह कार्य मुझसे होनेका नहीं। मैं अपने साधुवेषमें ऐसा कार्य नहीं कर सकता, न किसीको अनुमति या सम्मति ही दे सकता हूँ। गौ तो सभीकी माता है, अपनी मान्यताके अनुसार सभी

करनेमें स्वतन्त्र हैं। दो बातें होती हैं, या तो मारकर मर जाना या बिना किसीको मारे अपने आपको ही बलिदान कर देना। साधुके नाते मैं दूसरी ही बात कर सकता हूँ। अतः भगवान् मुझे शक्ति दें। मैंने निश्चय किया है आगामी कार्तिक शुक्ला गोपाष्टमी (ता० २० नवम्बर) से मैं अपने वृन्दावनस्थित गोलोकमें आजीवन अनशन-व्रत करूँगा। यह व्रत या तो प्राणोंकी समाप्तिपर ही समाप्त होगा अथवा सम्पूर्ण देशमें कानूनसे सम्पूर्ण गोहत्या-बंदीपर ही समाप्त होगा। जब श्री-श्रीमाँ आनन्दमयीने यह बात सुनी तो उन्होंने कहा—'पिताजी ! ऐसा क्यों करते हैं? और लोग तो अनशनका बहाना करते हैं, पीछे मनानेपर खाने लगते हैं। महात्मा गाँधीने यह बड़ा भारी अनर्थ किया। लोग बात-बातपर अनशनकी धमकी देने लगते हैं। अनशन एक खिलवाड़ हो गया है। मैं जानती हूँ आप ऐसा न करेंगे। आप तो अड़े तो अड़ जाओगे।'

मैंने कहा—'माँ ! क्या तुम चाहती हो, गौएँ कटती रहें।' इसपर वे बोलीं—'नहीं, कदापि नहीं। गोहत्या तो बंद होनी ही चाहिये। कोई दूसरा उपाय नहीं है?'

मैंने कहा—'हमारे पास दूसरा क्या उपाय है। न हमारे पास अस्त्र-शस्त्र है न तपस्या, तेज, प्रभाव तथा दूसरे सद्गुण हैं। अन्तिम उपाय यही है।'

सो, भगवान् कृपा करें। व्रतका निर्वाह करें—ऐसा हमने निश्चय किया है। थोड़ेसे भी आदमी प्राणोंकी आहुति दे दें तो गोहत्या ही बंद न होगी, यह सरकार भी हिल जायगी। नैपालकी राणाशाहीके विरुद्ध एक भक्तिमती महिलाने सामूहिक बलिदान किया था। एक छोटा-सा गाँव-का-गाँव उस माताके साथ प्रबल नदीके वेगमें छलाँग मार गया। महिलाएँ अपने छोटे-छोटे बच्चोंको गोदमें लेकर कूद गयीं। मेरे भी परिचित एक साधु उसमें कूदे। उसके थोड़े ही दिनों पश्चात् नैपालसे राणाशाहीकी समाप्ति हो गयी। अतः जो लोग मेरे साथ अनशन करना चाहें, वे गोलोक-संकीर्तन-भवन, वंशीवट वृन्दावनके पतेसे मुझसे पत्रव्यवहार करें। जो अपने घर ही रहकर अनशन करना चाहें वे अपने ही यहाँ करें—इसकी सूचना भर मुझे दे दें।

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्क पृष्ठ ९८६ से आगे]

श्रीवेंकटेश्वरबालाजीके सम्बन्धमें जो पौराणिक आख्यान हमें मिलते हैं, उनके अनुसार जिस प्रकार त्रेतामें भगवान् राम और लक्ष्मणजी द्वापरमें श्रीकृष्ण और बलरामरूपसे अवतीर्ण हुए, वे ही कलियुगमें वेंकटेश्वरबालाजीके रूपमें भू-मण्डलपर, विशेष कर शेषाचल पर्वतपर श्रीनिवासरूपमें प्रकट हुए। कथा इस प्रकार है—

किरातके तीरसे घायल श्रीकृष्णको देखकर सब द्वारकावासी, माँ यशोदा और अर्जुन आदि शोकविह्वल हो विलाप करने लगे।

यशोदाने श्रीकृष्णसे कहा—'हे कृष्ण ! मैं इस लोकमें कितने ही जन्म लूँ और तुम्हारी सेवा करूँ, मुझे तृप्ति नहीं होती। इसलिये तुम जहाँ कहीं भी रहो, मैं सदा सर्वदा तुम्हारी सेवामें लगी रहना चाहती हूँ।' यह सुनकर श्रीकृष्णने कहा—'माँ ! तुम इस मानव-शरीरको छोड़नेके बाद वकुलमालिका बनकर शेषाचलपर जाओ और वहाँ आदिवराहस्वामीकी सेवा करती रहो। फिर उस समय मैं तुमसे वहाँ आ मिलूँगा।' तदनन्तर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'अर्जुन ! तुम और कुछ घड़ियोंतक इन गोपिकाओंकी रक्षा करो और तब इन सोलह हजार गोपिकाओंको निज स्वरूप मिल जायगा।' फिर गोपिकाओंसे भी यही बात कहकर श्रीकृष्ण अपने मानव-शरीरका संवरण करके लक्ष्मीके साथ वैकुण्ठ जा पहुँचे। इसके बाद ही सब गोपिकाओंको निज-रूप, ऋषियोंका रूप प्राप्त हुआ। वे सब अपने-अपने योगदण्ड एवं कमण्डलुओंको हाथमें लेकर शेषाचलपर चले गये और वहाँ तपस्या करने लगे। इतनेमें कलिका प्रवेश हुआ। यह जानकर धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयों तथा द्रौपदीको साथ लेकर वैकुण्ठको चले। मार्गमें द्रौपदी और युधिष्ठिरके चारों भाई अपने शरीरोंको त्याग वैकुण्ठवासी हुए, केवल युधिष्ठिर सशरीर धर्मदेवताके साथ वैकुण्ठ जा पहुँचे।

श्रीकृष्णावतारकी लीला पूर्ण करनेके बाद एक बार भगवान् विष्णु और लक्ष्मी लेटे हुए थे। उस समय वैकुण्ठके द्वारपर आदिशेष पहरा दे रहा था। उसी समय भगवान् विष्णुके दर्शनार्थ वायुदेव आ पहुँचे। आदिशेषने उन्हें द्वारपर रोक दिया। वायुदेवने उससे कहा कि मैं

अत्यन्त आवश्यक कामसे विष्णु भगवान्‌के दर्शन करने आया हूँ और अब मुझे रोकनेसे तुम्हारी वही गति होगी जो कृतयुगमें द्वारपालकोंकी हुई थी।' लक्ष्मीने इन दोनोंका यह विवाद सुनकर अपने पतिसे कह दिया। विष्णुने वायु-देवको बुलाकर उनसे कहा कि 'तुम उस घमंडीसे बात मत करो।' इसपर आदिशेष बड़े क्रोधमें आया और वायुसे अपने बलकी डींग मारने लगा। तब विष्णुने व्यंग करते हुए दोनोंसे कहा—'बातोंसे काम नहीं चलता, इसलिये जो कर सकते हो, उसे कार्यरूपमें प्रमाणित कर दिखाओ। हे आदिशेष ! सुनो, मेरु-पर्वतके उत्तरमें उसका आनन्द नामक पुत्र है। तुम वहाँ जाकर उससे लिपट जाओ और तब वायु अपने बलसे उसे हिलायेगा। यदि वायु उसको हिला सके तो वही अधिक बली है, अन्यथा तुम। यह तुम दोनोंकी परीक्षा है।'

दोनोंने भगवान् विष्णुका यह प्रस्ताव स्वीकार किया। आदिशेष शीघ्र गतिसे आनन्द पर्वतसे लिपट गया। वायुने अपना सारा बाहुबल लगाकर उस पर्वतको हिलाया, पर वह तनिक भी नहीं हिला। वायुका क्रोध चढ़ गया। अब उसने अपना सारा बल लगाया। चौदहों लोक डाँवाडोल हो उठे। सब देवता और मनुष्य घबरा गये। फिर भी आदिशेषने अपनी पकड़ नहीं छोड़ी। सभी देवता और मनुष्योंने मिलकर शान्त होनेके लिये वायुसे प्रार्थना की, पर उसने नहीं सुना। फिर उन्होंने आदिशेषसे प्रार्थना की कि तुम इस समय चतुर्दश भुवनोंकी रक्षा करो, नहीं तो प्रलय हो जायगा। यह सुनकर आदिशेषने अपना एक सिर हटाया तो वायु उस पर्वतको उठाकर आकाशमार्गमें उड़ने लगा। मेरु अपने पुत्रकी यह विपत्ति देखकर बहुत डर गया और उसे छोड़ देनेके लिये वायुसे प्रार्थना की। अब वायु अपनी विजयपर प्रसन्न हुआ और आनन्द पर्वतको स्वर्णमुखी नदीके उत्तरमें आदिवराहक्षेत्रमें धीरेसे रख दिया। तब देवता लोगोंने वायुसे कहा—'वह पर्वत शेषांश-सम्भूत है। विष्णुको अपने रहनेके लिये एक योग्य स्थानकी आवश्यकता पड़ी। इसलिये तुम दोनोंको इस तरह उभाड़-कर उन्होंने अपना काम पूरा कर लिया। अतः तुम दोनों व्यर्थ मनस्ताप न करो।'

वायु और शेष यह वृत्त जानकर बहुत हर्षित हुए और भगवान्‌की स्तुति करके अपने-अपने स्थानको चले गये। इसी घटनाके कारण द्वापरयुगमें इस पर्वतके अञ्जनाद्रि और शेषाद्रि नाम पड़े।

कलिका प्रवेश हुआ। कलियुगमें मनुष्य धर्मशून्य हो गये। वे अपने-अपने वर्णाश्रम धर्मोंको छोड़कर स्वेच्छाचारी बन गये। यह देखकर त्रिलोकसंचारी नारदमुनि अपने पिता ब्रह्माजीके पास गये और उनसे बोले—'पिताजी ! कृष्णावतारकी लीला पूर्ण करके विष्णु भगवान् वैकुण्ठ चले गये। भूलोकमें कलिका प्रवेश हुआ। उसके प्रभावसे मनुष्य भगवान्‌को भूलकर सदा पुत्र, मित्र, कलत्र आदिकी मायामें लगे रहते हैं और अन्तको यम-सदन पहुँच जाते हैं।' इसपर ब्रह्माजीने कहा—'यह सच है कि भूलोकमें विष्णुके न रहनेसे मनुष्य भगवद्भक्तिसे विमुख विनष्ट होते हैं। इसलिये भूलोकमें विष्णुको बसानेका कोई उचित उपाय करो।' नारद इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये ब्रह्मासे आज्ञा और आशीर्वाद लेकर सत्यलोकसे भूलोक चले आये। भूलोकमें वे जाह्नवीके तटपर आ पहुँचे, जहाँ कश्यप आदि मुनिवर यज्ञ करते थे। नारदने उनसे पूछा कि 'तुम जो यज्ञ करते हो, इसका फलभोक्ता कौन है ?' यह प्रश्न सुनकर वे कुछ संदेहमें पड़ गये और कोई उत्तर नहीं दे सके। तब नारदने उनसे कहा कि 'तुम यह यज्ञफल उनको समर्पित करो जो त्रिमूर्तिमें सत्त्वगुणसम्पन्न, शमदमादिगुणसम्पन्न, अत्यन्त दयालु एवं मोक्षप्रद देव हैं।' यह कहकर नारद वहाँसे चले गये।

कश्यप आदि मुनियोंने त्रिमूर्तिमें सत्त्वगुणसम्पन्न देव कौन है, इस जिज्ञासापूर्तिके लिये महर्षि भृगुको भेजा। भृगु पहले सत्यलोक जा पहुँचे। वहाँ ब्रह्मा पद्मासनपर विराजमान थे और वेद, शास्त्र, सावित्री, गायत्री, सरस्वती तथा अष्ट दिक्पाल उनकी सेवामें संलग्न थे। भृगु ब्रह्माको दण्ड-प्रणाम करके खड़े रहे। पर ब्रह्माको इनका आगमन नहीं मालूम हुआ। फिर भृगु स्वयं उस ब्रह्मसभामें एक आसनपर जा बैठे। थोड़ी देरमें ब्रह्माने अपने नेत्र खोले और भृगुको सभामें आसीन हुए देखा, पर उनसे इसलिये नहीं बोले कि वे अनुमति लिये बिना पहले ही सभामें आसीन हुए हैं। इसपर भृगुने क्रोधमें आकर निश्चय कर लिया कि ब्रह्मा पूजाके योग्य नहीं हैं। वे तुरंत सत्यलोक छोड़कर कैलास जा पहुँचे।

जब भृगु कैलास पहुँचे तब वहाँ शंकरजी पार्वतीजीके पास थे, अतः उन्होंने भृगुका आगमन नहीं देखा। परंतु पार्वतीने भृगुको देखकर ऋषि-आगमनकी बात अपने पतिको बता दी। इससे शंकरजी बड़े क्रोधमें आकर भृगुको दण्ड

देनेको उद्यत हुए। इसपर भृगुको भी क्रोध आ गया और वे शंकरको शाप देकर चले गये।

भृगु कैलाससे वैकुण्ठ जा पहुँचे। वहाँ विष्णु लक्ष्मीके साथ हंसतूलिका तल्पपर लेटे हुए थे। यह देखते ही भृगु बड़े क्रोधमें आये और विष्णुके वक्षपर उन्होंने पाद-प्रहार कर दिया। विष्णु तुरंत उठ खड़े हुए और विनयपूर्वक भृगुके पाँव पकड़कर दबाने लगे और बोले कि 'मैं आपका आगमन न जाननेके कारण लेटा रहा। इसलिये मुझे क्षमा कीजिये।' यह सब देखकर लक्ष्मी बड़े क्रोधमें आयीं और विष्णुके वक्षसे दूर जा खड़ी हुईं। विष्णुका ऐसा विनम्र व्यवहार देखकर भृगुका सारा क्रोध उतर गया। उन्होंने दण्ड-प्रणाम करके भगवान् विष्णुसे कहा—'हे भक्तवत्सल त्रिलोकीनाथ! ब्रह्ममानसपुत्र नारदने गङ्गानदीके तटपर जाकर वहाँ यज्ञ करनेवाले कश्यप आदि मुनिवरोंसे पूछा कि तुम इस यज्ञका फल किसे समर्पित करते हो। वे इसका जवाब नहीं दे सके और संदेहमें पड़े चुप रहे तो नारद उनसे यह कहकर चले गये कि त्रिमूर्तिमें जो सत्त्वगुणसम्पन्न है उनको यह यज्ञ-फल दिया जाय। बस, उन मुनियोंने त्रिमूर्तिमें सत्त्वगुणसम्पन्नको जान लेनेके लिये मुझे भेज दिया। मैं सत्यलोक तथा कैलास चलकर आया और वहाँ ब्रह्मा तथा शंकरकी परीक्षा की। फिर आपकी परीक्षा करने यहाँ आया और अच्छी तरह अनुभव कर लिया कि त्रिदेवोंमें आप ही सत्त्वगुणसम्पन्न, भुक्ति-मुक्तिदायी, भक्तवत्सल, सर्वभूताधार एवं सर्वभुवनधर्ता हैं।' यह कहकर भृगुने अनेक प्रकारसे विष्णुकी स्तुति की। विष्णु भृगुसे गले मिले और उन्हें आशीर्वाद देकर भेज दिया।

भृगुने गङ्गातटपर जाकर कश्यप आदि मुनियोंसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुनकर वे अत्यधिक हर्षित हुए और यज्ञफल विष्णुको समर्पित कर परम संतुष्ट हुए।

विष्णु भगवान्‌के वक्षपर भृगुके पाद-प्रहारसे उसी वक्षःस्थलमें रहनेवाली लक्ष्मीका जो अपमान हुआ, उसे वे नहीं सह सकीं। वे अपने पतिदेवसे इस प्रकार बोलीं—'हे प्राणनाथ! आपने अपने वक्षपर लात मारनेवाले दुष्ट भृगुको दण्ड देनेके बदले उसका आदर किया। इससे मेरा बड़ा अपमान हुआ, जो मुझसे सहा नहीं जाता। इसलिये मैं वैकुण्ठ छोड़कर भू-लोकमें चली जा रही हूँ और वहाँ आपके चरणकमलोंका ध्यान करती हुई समय बिताऊँगी।' यह सुनकर विष्णुने कहा—'हे कमलाक्षी! भृगुने मेरे वक्षपर पाद-प्रहार कर मेरा बड़ा उपकार किया है। यह मेरे लिये अत्यन्त शुभकर है। इसलिये इस विषयमें तुमको क्रोध नहीं करना चाहिये।' यह सुनकर लक्ष्मी और क्रोधातुर हो बोलीं—'हे पुरुषोत्तम! तुम चराचर सृष्टिके संरक्षक हो। तुम त्रिमूर्तिके आदिकारण हो और चतुर्दश भुवनोंको अपनी कुक्षिमें रखनेवाले हो। तुम भक्तोंके आप्तबन्धु और उनके नित्य संरक्षक परमात्मा हो। ऐसे तुम्हारे वक्षपर भृगुने पाद-प्रहार किया तो तुम उसे सहकर सहर्ष उनसे गले मिले और उन्हें आशीर्वाद दिया। इस व्यवहारसे तुम्हारे वक्षःस्थलपर रहनेवाली मेरा जो अपमान हुआ, उसे तुमने नहीं पहचाना। अतः मैं यहाँ बिल्कुल नहीं रह सकती।' इसपर विष्णु फिर बोले—'हे लक्ष्मी! कदाचित् तुम नहीं जानतीं यह भृगु कौन है? सच मानो, यह तुम्हारा पुत्र लगता है। उसने मेरे वक्षपर पाद-प्रहार क्यों किया? मेरी परीक्षा करनेके लिये किया। अतः केवल इसी कारणसे तुम वैकुण्ठ छोड़कर चली जाओगी तो सभी लोग तुम्हारा परिहास करेंगे।' यह सुनते ही लक्ष्मीके क्रोधका ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने विष्णुसे कहा—'आज भृगुने आपको सत्त्वगुणसम्पन्न कहकर आपकी बड़ी स्तुति की और इसलिये आपने उसे क्षमा कर दिया। कल इसी प्रकार और कोई चाहे ग्वाला भी हो, आपके ऊपर प्रहार करे। भूलोकवासी आपपर चाहे पत्थर फेंकें, म्लेच्छ जातिवाले भी आपकी परवा नहीं करें और सब आपकी उदारतासे लाभ उठावें। यह मुझे असह्य है। मुझे यह विरहदशा पहुँचानेवाले ब्राह्मण जातिके लोग भिक्षाटन करके अपने पुत्र-कलत्रका पालन-पोषण करेंगे। वे गरीब बन जायँगे और खान-पानके लिये विद्या बेचकर जीविका चलायेंगे।' बस, इतना कहकर लक्ष्मी उसी समय वैकुण्ठसे निकली और वहाँसे करवीपुर नामवाले कोल्हापुर जा पहुँची जो वेंकटाचलसे करीब बीस योजन दूर है।

अब लक्ष्मीके वियोगमें अत्यन्त व्याकुल विष्णु चिन्तामग्न हो गये—'लक्ष्मीके विना वैकुण्ठ कला-विहीन हो गया। जिसको लक्ष्मीकी कृपा प्राप्त नहीं है, वह सभीसे निन्दा पाता है। लक्ष्मीके न रहनेसे सभी लोग भाग्यविनष्ट हो जायँगे। अब लक्ष्मी पृथ्वीपर जा पहुँची। वहाँ जो लोग उसकी सेवा करेंगे, उन सबको वह धनधान्यसम्पन्न एवं सर्वसुखसम्पन्न बनायेगी, चाहे वे मूढ़ हों या नीच, भक्त हों या मुक्त, गरीब हों या भिक्षुक, कुलद्रोही हों या हिंसक, स्वार्थी

हों या निःस्वार्थी। इतना ही नहीं, वह राजाको रंक और रंकको राजा बनायेगी। नीच नर भी धन पानेसे परम भक्त कहलायेगा। ऐसे मनुष्य धन-मदसे घमंडी, द्रोही, शराबी, मांसभक्षक और गुरुद्रोही बनेंगे। वे माँ-बापकी सेवा तथा देव-भक्ति छोड़ देंगे, न्याय-पथको छोड़कर क्रूर बन जायँगे। यही नहीं, मेरा स्मरण छोड़ देंगे और मेरे भक्तोंका निरादर करेंगे। आखिर वे पापी बनकर यमसदन पहुँच जायँगे और वहाँ नरक-यातनाओंको भोगेंगे।' यह सब सोचते हुए भगवान् विष्णु वैकुण्ठ छोड़कर भूलोकमें अपने निवासयोग्य पवित्र स्थानकी खोजमें पर्वतीय एवं वन्य पर्वतोंमें घूमने लगे। अन्तमें शेषाचलपर पहुँचे जो आदिवराहक्षेत्र नामसे प्रसिद्ध है। यह शेषाचल गङ्गा नदीके दक्षिणमें तीन सौ योजनकी दूरीपर स्वर्णमुख नदीके उत्तरमें है। यह तीन योजन चौड़ा और तीस योजन लम्बा है। इसके शिरोभागमें वेंकटाद्रि, मध्यभागमें नृसिंहाद्रि तथा पुच्छभागमें श्रीशैल हैं। वह ब्रह्मा आदि देवता लोगों और ऋषि-मुनियोंके वासयोग्य है। यह तपोवनों तथा पवित्र तीर्थोंसे सुशोभित है।

ऐसे इस शेषाचलके अधिपति, आदिवराह स्वामीसे विष्णुने प्रार्थना की कि इस पहाड़पर मेरे रहनेके लिये थोड़ी जगह दीजिये। यह सुनकर वराहमूर्तिने कहा—'हे मित्रवर! एक आर्य-वचन है—न गरीबको वचन दे, न धनवान्को आश्रय। इसलिये तुम्हारा वृत्तान्त सविस्तर जाने बिना मैं तुमको जगह नहीं दे सकता। अतः तुम अभी अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाओ।' इसपर विष्णुने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। फिर आदिवराहने विष्णुसे कहा—'हम दोनों एक ही मूल रूपके हैं। इसलिये मेरा सब कुछ तुम्हारे हाथ समर्पित है। जो चाहो सो करो।' यह सुनकर विष्णु हर्षित हो आदिवराहसे बोले—'मैं धन्य हो गया हूँ। आप इस क्षेत्रके अधिपति हैं और इसलिये कलियुगमें जो भक्त मेरे दर्शन करने यहाँ आयेंगे पहले वे आपके दर्शन करेंगे और पीछे मेरे।' यह बात सुनकर, आदिवराह बहुत प्रसन्न हुए। तबसे ये दोनों अपने भक्तोंको दर्शन एवं वरदान देते हुए वहीं रह गये। शेषाचलपर विष्णुके निवासकी बात जानकर ब्रह्माजीने पुष्करिणीके दक्षिण भागमें दशरथ तथा वासुदेवकी याद दिलानेवाला इमलीका पेड़ उत्पन्न किया और उसके नीचे कौशल्या तथा देवकीकी कलाओंसे शोभित एक वल्मीकको खड़ा किया।

एक दिन विष्णु शेषाद्रिपर घूमते हुए इस इमलीके पेड़के पास आये और नीचे यह वल्मीक देखा। यह देखते ही विष्णुको त्रेतायुगका रामावतार तथा द्वापरयुगका कृष्णावतार याद आ गया। जब वे वल्मीकके निकट पहुँचे तो उन्हें उसके भीतरसे वाद्यध्वनिसे सम्मिलित एक मधुर एवं दिव्य गान सुन पड़ा। उस गानको सुननेके लिये वे वल्मीकके बिलकुल निकट चले तो इस वल्मीकका मुख-द्वार और उसके भीतर नीचेकी ओर सीढ़ियाँ दीख पड़ीं। तब वे उन सीढ़ियोंपरसे वल्मीकके भीतर चले तो वह उन्हें उस शेषशय्या-सा लगा जिसपर वे वैकुण्ठमें लेटे रहते थे। इसलिये अब उनके आनन्दकी सीमा न रही। बस, विष्णु उसीको अपना निवास बनाकर वहीं रह गये।

यह समाचार जानकर ब्रह्माने चाहा कि विष्णु पृथ्वीपर प्रत्यक्ष देव बने रहें और भक्तोंके पाप दूर करते हुए लोक-कल्याण करते रहें। तुरंत ब्रह्माने कैलास जाकर शंकरसे कहा कि 'अब विष्णु पृथ्वीमें, शेषाद्रिपर जो वल्मीक है, उसमें रहते हैं और उन्हें प्रसन्न करनेके लिये हमें कोई उपाय करना चाहिये।' शंकरने इस प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार कर लिया।

शंकर और ब्रह्मा कोल्हापुर चले और लक्ष्मीसे यों बोले—'हे लक्ष्मी! जब तुम वैकुण्ठ छोड़कर यहाँ चली आयीं, तभी विष्णु भी वैकुण्ठ छोड़ चले गये और घोर अरण्योंमें घूमते हुए अनेक कष्टोंको झेलकर शेषाद्रिपर पहुँचे और अब वहाँ खान-पानके बिना एक वल्मीकमें रहते हैं। अब हमें उनको प्रसन्न करनेका कोई उपाय करना चाहिये।' यह सुनकर लक्ष्मीने उनसे कहा—'कुछ अनिवार्य कारणोंसे मुझे कुछ कालतक यहीं कोल्हापुरमें रहना है। इसलिये मैं यहाँ रहती हूँ। अपने स्वामीको प्रसन्न करनेके आपके प्रयत्नमें मुझसे जो सहायता हो सकती है, उसे करनेको मैं सदा तैयार हूँ। बताइये आप कौन-सा उपाय करना चाहते हैं।' फिर उन्होंने लक्ष्मीसे कहा—'माँ! हम दोनों, गाय और बछड़ेके रूप धरेंगे और तुम ग्वालिनका रूप धरकर हमें चोलराजाको बेच डालो।' लक्ष्मीने इस प्रस्तावको स्वीकार कर लिया। बस, दूसरे ही क्षणमें ये तीनों अपने-अपने नये रूपोंमें खड़े हुए।

ग्वालिन गाय और बछड़ेको चन्द्रगिरि ले गयी और उन्हें वहाँके चोलराजाको बेचकर कोल्हापुर वापिस चली गयी। चोलराजाने इन गाय-बछड़ोंको अपने चरवाहेको सौंपकर उन्हें ठीक-ठीक चराते रहनेकी आज्ञा दी। राजाज्ञाके अनुसार वह ग्वाला इनको भी अन्यान्य हजारों गायोंके साथ ले जाकर चराता रहा। यह नयी गाय भी रोज अन्य गायोंके

साथ चरने शेषाद्रिपर चली जाती थी। फिर वहाँसे वह उस वल्मीकके पास पहुँचती थी जिसमें विष्णु रहते थे। वह वल्मीकपर खड़ी होकर विष्णुको दूध पिला देती थी और बादमें चुपचाप वापस चली आती थी। इस तरह कुछ दिन बीत गये, परंतु यह समाचार गोपालकको तनिक भी मालूम नहीं हुआ।

चोलरानीने देखा कि इस नयी गायके पास दूध बिल्कुल नहीं मिलता था। एक दिन रानीने गोपालकको बुलवाकर उससे पूछा—'क्यों रे दुष्ट ग्वाले! क्या तू रोज इस नयी गायका दूध पी लेता है?' यह सुनकर ग्वाला काँप उठा और बोला—'रानीजी! मैं सचमुच इस गायका दूध नहीं पीता। मैं रोज इस गायको भी और गायोंके साथ ले जाकर चराता हूँ। बस, और कोई पाप मैं नहीं जानता।' तब रानीने उससे कहा—'रे मूर्ख! मैं तेरी बातोंका विश्वास नहीं कर सकती। कलसे यदि यह गाय दूध नहीं देगी तो तुझे कठिन दण्ड दिया जायगा।' यह सुनकर ग्वाला डरते हुए, 'जो आज्ञा' कहकर चला गया।

दूसरे दिन सबेरे गोपालक हाथमें कुल्हाड़ी लेकर गायोंको चराने शेषाद्रिपर चला। सब गायें चरने लगीं। यह नयी गाय उनसे बिछुड़कर यथारीति उस वल्मीकके पास जाकर श्रीनिवासको दूध पिलाने लगी। गोपालक गायके पीछे-पीछे चला और यह सब देखने लगा। तदनन्तर बड़े क्रोधमें आकर गायको मारनेके लिये गोपालकने ज्यों ही कुल्हाड़ी ऊपर उठायी, त्यों ही परम दयालु प्रभुने गायकी रक्षा करनेके लिये वल्मीकसे बाहर आते हुए अपना सिर बाहर रक्खा। कुल्हाड़ीका प्रहार गायपर पड़नेके बदले श्रीनिवासके सिरपर पड़ा। सिरसे सात तालके प्रमाणमें रक्त फूटकर बहने लगा। यह देखते ही गोपालक बेहोश हो जमीनपर गिर पड़ा। तुरंत वह गाय दौड़ती हुई चली गयी और चोलराजाके दरबारमें जा पहुँची और भूमिपर लेटकर बिलख उठी। उसके शरीरपर खूनके धब्बे लगे हुए थे। यह दृश्य देखकर दरबारके सभी लोग सन्न रह गये। गायके इस विलापका कारण कोई भी नहीं समझ सका। वे सोचमें पड़े हुए एक दूसरेका मुँह ताकते रह गये। थोड़ी देर सोचनेके बाद चोल-राजाने अपने एक नौकरको बुलाकर आज्ञा दी कि तुम अभी इस गायके साथ जंगलमें जाकर वहाँ जो घटना घटी है वह सविस्तर देखकर आओ। यह राजाज्ञा सुनते ही गाय दौड़ती हुई शेषाद्रिपर वल्मीकके पास पहुँची। यह नौकर भी गायके पीछे-पीछे चलकर वहाँ पहुँचा और वहाँ बेहोश पड़े हुए ग्वालेको तथा वल्मीकसे फूटनेवाले रक्त-प्रवाहको देखा। यह सब दृश्य देख वह भयभीत-सा दरबारमें पहुँचा और सारा वृत्तान्त निवेदन कर दिया। राजा पालकीमें बैठकर रवाना हुआ और वल्मीकके पास पहुँचा। वहाँका दृश्य देखकर स्तब्ध रह गया। थोड़ी देर बाद यों बोला—'इस जंगलमें क्यों ऐसा घोर कृत्य हुआ? इस वल्मीकसे क्यों इस तरहका रक्त-प्रवाह निकलता है? हाय रे भगवान्! अब मैं क्या करूँ। न जाने किस दुष्टने यह घोर पाप किया है?'

चोलराजाके ये वचन सुनते ही श्रीनिवास उस वल्मीकमें-से बाहर आये। उन्हींके सिरसे रक्त-प्रवाह हो रहा था। उन्होंने राजासे कहा—'रे पापी! मैं वैकुण्ठ छोड़कर इस वल्मीकमें आ बसा हूँ। अब तुमने अपने ग्वालेसे मेरे ऊपर कुल्हाड़ीका आघात करवाया। प्रजाके पापके लिये राजा ही जिम्मेदार है। इसलिये वह पापफल तुम्हींको भोगना है। तुम अभी पिशाच बन जाओ।' यह शाप सुनकर राजा भय-कम्पित हो गया और श्रीनिवासके पैरों पड़कर शाप-मुक्तिके लिये अनेक प्रकारसे प्रार्थना करने लगा। प्रार्थनासे प्रसन्न हो दयार्द्र विष्णुने कहा—'राजा! मैं अपने भक्तोंको पीड़ित रहते नहीं देख सकता। मेरा शाप भी व्यर्थ नहीं हो सकता। तुम पिशाच बनोगे और इसी क्षेत्रमें कुछ कालतक रहनेके बाद यह रूप छोड़ दोगे। फिर राजा सुधर्मके पुत्र होकर जन्म लोगे तथा आकाश राजाके नामसे राज्य-पालन करोगे। अपनी कन्याके साथ मेरा विवाह करोगे। तबतक तुम्हारे सब पाप कट जायँगे।' यह सुनकर चोलराजाने विष्णुको कृतज्ञतापूर्वक प्रणाम किया और उस ग्वालेपर भी कृपा करनेकी प्रार्थना की।

इसी समय वह ग्वाला होशमें आया, पर अंधा बन गया। उसने विष्णुको प्रणाम करके क्षमा-याचना की। विष्णुने ग्वालेसे कहा—'तुमको इस जंगलमें कुछ कालतक इस तरह अंधा ही रहकर घूमना है। कुछ काल बाद मैं इस क्षेत्रमें एक प्रतिमाके रूपमें प्रकट होऊँगा और तब तुम मेरे दर्शन करनेसे पूर्ववत् अपनी दृष्टि पा सकोगे। तबतक मेरी पूजा करते जाओ तो पापमुक्त हो जाओगे। एक बात और सुनो! वैकुण्ठ छोड़कर इस वल्मीकमें आ बसते समय मैंने अपने पहले दर्शन तुम्हींको दिये। इसलिये कलियुगमें मैं प्रतिमाके रूपमें अपने पहले दर्शन तुम्हारे वंशके लोगोंको ही दूँगा।'

शापके अनुसार चोलराजा पिशाच बन गया और सदा भगवान्‌का ध्यान करता रहा। वह कुछ कालके बाद राजा सुधर्मका पुत्र होकर पैदा हुआ। ग्वाला अंधा ही रहकर सदा भगवान्‌का ध्यान करते हुए समय काटता रहा।

श्रीनिवास घावकी पीड़ा उठाते हुए वल्मीकमें रहे। उस समय देवगुरु वहाँ श्रीनिवाससे आ मिले और घाव ठीक करनेके लिये एक जड़ीकी दवा बताकर चले गये। श्रीनिवास उस जड़ीकी खोज करते हुए जंगलमें घूमने लगे। रास्तेमें वकुलमालिकासे उनकी भेंट हुई। वकुलमालिका वहाँ आदि-वराहस्वामीकी सेवा करती थी। उसने घायल श्रीनिवासको देखकर उनसे प्रश्न किया—'बेटे! तुम कौन हो और तुमको यह घाव कैसे हुआ? तुम इस तरह इस निर्जन वनमें क्यों घूम रहे हो?' यह सुनकर वह उसके निकट चली आयी और अपने कमण्डलुके जलसे उनका मुँह धोया। एक जड़ी लाकर उनके घावपर दवा लगायी और कुछ खिला-पिलाकर बिठाया। तदनन्तर श्रीनिवाससे अपना सारा वृत्तान्त कह सुनानेको कहा।

वकुलमालिकाका यह उदार व्यवहार देखकर श्रीनिवासने उनसे कहा—'हे माई! मैं अनाथ हूँ। कई अवतार लेकर नाना कष्ट झेलनेके बाद, मैं इस जंगलमें आ बसता हूँ। यह घाव मुझे एक ग्वालेके द्वारा लगा है। मेरी देख-रेख करनेवाला मेरा कोई नहीं है। इसलिये मैं इस तरह जंगलमें घूमता चला आया।' यह सुनते ही वकुलमालिकाको वह वर याद आया जो द्वापरयुगमें उसको श्रीकृष्णसे प्राप्त हुआ था। वह बोली—'बेटे! मैं भी अनाथ हूँ। मेरे कोई संतान नहीं है। मेरी देख-रेख करनेवाला भी कोई नहीं। इस पुण्यक्षेत्रके प्रभु आदिवराह स्वामीने मुझे आश्रय दिया है। उन्हींकी सेवा करती हुई मैं यहाँ रहती हूँ। तुम्हें देखते ही मुझे ऐसा लगा कि तुम मेरे निजी पुत्र हो। अब मेरे आनन्दकी सीमा नहीं। मैं तुम्हें अपना निजी पुत्र मानती हूँ। तुम यहीं रह जाओ, और कहीं मत जाओ।' तब श्रीनिवासने कहा—'माँ! यहाँसे थोड़ी दूरपर इमलीके पेड़के नीचे एक वल्मीक है, उसीमें मैं रहता हूँ। तुम मेरे साथ आकर एक बार वह वल्मीक देखो।'

वकुलमालिका श्रीनिवासके साथ चली और वल्मीक देखकर अधिक हर्षित हुई। उसने मनमें समझा कि यह मेरा परम भाग्य है कि मैंने श्रीकृष्णावतारके समय यशोदा होकर परमात्माकी सेवा की और अब इस जन्ममें भी उनकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त है। फिर वह वहाँसे वराहस्वामीके पास वापिस चली आयी। तब वराहने उनसे पूछा—'माँ! आज तुम अत्यधिक संतुष्ट दीख पड़ती हो इसका क्या कारण है?' वकुलाने श्रीनिवाससे अपने मिलने और उनसे अपने सम्भाषण-का सारा वृत्त सविस्तर कह सुनाया। फिर आदिवराहने कहा—'माँ! मुझमें और श्रीनिवासमें कोई भेद नहीं है। हम दोनों एक ही हैं। तुम श्रीनिवासके पास चली जाओ और उसकी सेवा करती रहो। इस कलियुगके अन्तमें तुम उनके पवित्र चरणकमलोंके पास पहुँच सकोगी।' आदि-वराहके इस वचनके अनुसार वकुलादेवी श्रीनिवासके पास चली गयी और बड़े आनन्दसे उनकी सेवा करती रही।

(क्रमशः)

तुझसे मिले बिना—

(रचयिता—श्रीबालकृष्ण बलदुवा)

बहुत दिन हो गये
तुझसे मिले बिना॥
तुझसे मिले बिना
पुराना नया नहीं होनेका॥
और—पुराना नया हुए बिना
जीवनकी रूक्षता नहीं जानेकी;
आँखोंका धुँधलका नहीं हटनेका॥

सप्तसिन्धु और आर्योंका मूल स्थान

(व्याख्याकार—श्रीपीताम्बरापीठ-संस्थापक श्री १००८ स्वामीजी महाराज, दतिया)

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥
(ऋ० ८ । ६९ । १२)

शब्दार्थ—हे वरुण ! तुम श्रेष्ठ देव हो, तुम्हारी सात सिन्धुओंकी धाराएँ तालु छिद्रसे प्रवाहित होनेवाली छिद्र धाराओंकी तरह प्रवाहित होती हैं।

ऋचाकी व्याख्या

वरुण, इन्द्र एवं विष्णु—इन तीनों देवताओंका स्वरूप एवं कार्य परस्पर बहुत ही मिलता-जुलता है। विष्णुको इन्द्रका सखा बताया गया है; विष्णुका एक नाम उपेन्द्र भी कोषोंमें मिलता है। वारुणमण्डलमें भी विष्णुका ध्यान योगियोंने माना है, जिसे स्वाधिष्ठानके नामसे कहा गया है। इसलिये विष्णुका सम्बन्ध इन्द्र एवं वरुणसे होनेसे दोनोंमें विष्णुदेवताका अन्तर्भाव है। इस विषयमें एक बार विवाद उठा कि इन्द्र देवता राजा है या वरुण ? कुछ लोग वरुणके माननेवाले हुए और कुछ इन्द्रके पक्षपाती बने। विवादको मिटानेके लिये पूर्व दिशाका राज्य इन्द्रको दिया गया एवं पश्चिम दिशाके राजा वरुण नियुक्त हुए। इस प्रकार विवाद समाप्त किया गया। पंजाब प्रदेशके पश्चिम हदपर रहनेवाले सिन्धु-नदको पूर्व एवं पश्चिम भागकी सीमा नियत किया गया। सिन्धु-नदके पश्चिम भागमें सप्तनद-प्रदेश माना गया है। भूमध्य-सागरतक यह सीमा पहुँचती है। यह वरुणका प्रदेश है। मन्त्रमें वरुणको सुदेव पदसे कहा गया है। उन सप्तनदियोंके वैदिक नाम ऋग्वेदकी एक ऋचामें इस प्रकार बताये गये हैं—(१) तृष्टामा, (२) सुसर्तु, (३) रसा, (४) श्वेती, (५) कुभा, (६) गोमती, (७) क्रमु। 'ऐतरेयालोचन' नामक ग्रन्थमें पण्डित सत्यव्रत समाश्रमीने इन नदियोंके आजकलके नाम इस प्रकार दिये हैं—तृष्टामा और सुसर्तु ये सुवास्तुके नामान्तर हैं, जिन्हें आजकल स्वाद कहते हैं। रसाका नाम काबुल, श्वेतीका नाम अर्जुनी (डेराइस्माइल खाँके पास बहनेवाली), कुभा काबुल, क्रमु कुर, गोमती गोमलति (ऐ० पृ० २८) इत्यादि नाम दिये गये हैं। इन्हें पश्चिम प्रदेशका सप्तसिन्धु कहते हैं। यह प्रदेश भी आर्यावर्तका ही भाग था। सिन्धुके पूर्वका देश भी सप्तसिन्धुके नामसे कहा जाता है, जो गङ्गा, यमुना, सरस्वती, सतलज, व्यास, रावी और झेलमके नामसे प्रसिद्ध है। कुछ विदेशी विचारकोंने पश्चिमके सप्तसिन्धुको ही आर्योंका मूल स्थान माना है और आर्योंका वहींसे भारतमें प्रवेश हुआ है—ऐसा कहा है; परंतु यह बात अब अप्रामाणिक सिद्ध हो चुकी है। आर्योंका मूल स्थान भारत ही है। उनका बाहरसे आना किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नहीं है।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

मनुस्मृतिके इस प्रमाणसे आर्योंका बाहरसे आना मानना सर्वथा अयुक्त है। इस देशके उत्पन्न ब्राह्मणोंसे सारे संसारके लोगोंने सर्वप्रथम अपनी-अपनी सभ्यताको सीखा। इसलिये सर्वप्राथम्य भारतको ही है। श्लोकमें अग्रजन्मा शब्दका प्रयोग आर्योंका बाहरसे आनेवाले मतको भ्रान्त बताता है; क्योंकि कहीं बाहरसे आनेवालेके लिये अग्रजन्मा शब्दका प्रयोग अयुक्त है। अनार्योंको भी यहाँके आदिवासियोंकी उपाधि देना सर्वथा अनुपयुक्त है। आर्य बाहरसे नहीं आये हैं। इसी प्रकार लोकमान्य बालगंगाधर तिलकका उत्तरीय ध्रुव एवं श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वतीका तिब्बत (त्रिविष्टप) से आर्योंका आना कहना भी सर्वथा निराधार ही है। सप्त छिद्र—दो

आँख, दो कान, दो नाक और मुख—इनसे ज्ञानकी धाराएँ जैसे बहती रहती हैं, उसी प्रकार वरुण देवके द्वारा सप्तसिन्धु प्रवाहित होते रहते हैं। व्याकरण-महाभाष्यकार महर्षि श्रीपतञ्जलिने शब्दब्रह्मको वरुण पदसे ग्रहण करके प्रथमा, द्वितीया आदि सात विभक्तियोंको सप्तसिन्धु-पदसे ग्रहण किया है। मन्त्रका माहात्म्य ही ऐसा है कि उनसे अनेक अर्थोंकी सूचना प्राप्त होती है।

पति-पत्नी (तथा सब)के लिये हितकर अठारह अमृत-संदेश

१—पति और पत्नी दोनों एक दूसरेके पूरक हैं। एकके विना दूसरा अधूरा है। दोनों मिलकर ही पूर्ण हैं। वे एक दूसरेके सहधर्मी, जीवन-सहचर, प्रेमी और प्रेमास्पद हैं।

२—पति-पत्नी दोनोंके जीवनका न तो उद्देश्य भिन्न है और न स्वार्थ ही पृथक् है। अतएव उनमें संघर्षके लिये न तो स्थान है और न अवसर। अविच्छिन्न सहयोग और एकात्मतापर ही दाम्पत्य-जीवन सुप्रतिष्ठित है। पति-पत्नी एक प्राण, दो देह हैं।

३—पति-पत्नी दोनों यह समझें कि भोगोंसे कभी सच्चा सुख नहीं मिल सकता। त्याग और कर्तव्य-पालनसे ही जीवनमें शाश्वत सुखकी झाँकी मिल सकती है। काम-भोग-सुख तो सुख है ही नहीं।

४—किसी भी दशामें भगवान्‌को कभी नहीं भूलना चाहिये। वे ही सर्वाधिक प्रेमके आस्पद हैं। सती नारी पति-प्रेममें उसीका साक्षात्कार करती है और विवेकी पुरुष सती पत्नीके भावका अनुकरण करके भगवत्प्रेम प्राप्त करता है।

५—जिस किसी भी बर्तावसे अपनेको दुःख होता हो और जो अपनेको बुरा लगता हो, वह बर्ताव दूसरेके साथ कभी नहीं करना चाहिये। यह धर्मका सर्वस्व है।

६—माता-पिता-गुरुजन आदिको प्रतिदिन नमस्कार करो। उनका कभी अपमान या तिरस्कार मत करो। सेवा-सद्व्यवहार, नम्रता, आज्ञापालन आदिके द्वारा उनका आशीर्वाद प्राप्त करते रहो।

७—खान-पानकी शुद्धि परमावश्यक है। अशुद्ध वस्तु अशुद्धताके साथ बनी हुई, अशुद्ध हाथोंसे बनी हुई तथा मांस, मद्य, अंडे, लहसुन, प्याज, जूँठन कभी नहीं खाने चाहिये। अन्यायोपार्जित द्रव्यसे प्राप्त खान-पानसे भी बड़ी हानि होती है।

८—दूसरेके अधिकारकी सदा रक्षा करनी चाहिये और सदा अपने कर्तव्यकी।

९—अभिमानसे पतन होता है और विनयसे सर्वसुख प्राप्त होते हैं। कामनासे दुःख बढ़ते हैं और संतोषसे सर्वश्रेष्ठ सुखकी प्राप्ति होती है। सदा सबके साथ विनय-नम्रताका बर्ताव करो। अभिमानका सर्वथा त्याग करो। सबके साथ मधुर भाषण करो।

१०—सबका सदा हित चाहो, करो; कभी दूसरेका न अहित चाहो, न करो, न किसीको करनेकी सम्मति दो और न कोई करता हो तो उसका समर्थन करो।

११—दूसरेका हक छीनने या किसी प्रकारसे लेनेकी कभी इच्छा मत करो।

१२—कुसङ्ग विष है, उससे सदा बचो। सत्सङ्ग तथा स्वाध्याय अमृत हैं, उनका नित्य सेवन करो। सत्य और सदाचारको कभी शिथिल न होने दो।

१३—नारीके लिये सबसे महत्त्व और सम्मानकी वस्तु है—उसका पतिके प्रति निश्छल सरल प्रेम,

पतिको परमेश्वर मानकर पतिके मनका अनुगमन। इसीका दूसरा नाम 'पातिव्रत्य' है। यह भारतीय नारी-की परम्परागत विशेषता है।

१४—पुरुषके लिये परमावश्यक है—पत्नीका संरक्षण, हितसाधन और सुख-सम्पादन। पत्नी उसकी मित्र है, अर्धाङ्गिनी है, दासी कदापि नहीं। उसका स्वेच्छासे वरण किया हुआ स्वामीका दासत्व तो उसके सतीत्वकी शोभा है, उसका शृङ्गार है, पतिका अधिकार नहीं। धर्मपत्नीकी रक्षाके लिये जगत्में पुरुषोंने बड़े-बड़े बलिदान किये हैं।

१५—लज्जा, विनय, सुशीलता, निस्स्वार्थ सेवा और सरल प्रेम साध्वी नारीके आभूषण हैं।

१६—संयम, सदाचार, समवर्तिता, मित्रभाव और निस्स्वार्थ प्रेम सज्जन पुरुषके गुण हैं।

१७—कौटुम्बिक जीवनमें अपने स्वार्थको पीछे रखकर कुटुम्बके अन्यान्य लोगोंकी सुख-सुविधापर पहले ध्यान देना पति-पत्नी दोनोंका परम पवित्र कर्तव्य है।

१८—बच्चोंके लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा, स्वास्थ्य-सुधार और चरित्रकी निर्मलतापर (अपने आचरण-द्वारा) सबसे अधिक ध्यान देना चाहिये।

अनन्य भक्ति

(लेखक—श्रीरामरूपजी तिवारी)

सूर्यास्त हो चुका था, क्षितिजपर लालिमा धीमी पड़ रही थी, निर्मल आकाशमें नक्षत्रगण अदृश्यताकी परत तोड़कर बाहर निकल रहे थे। गङ्गाकी अविरल धारा निस्संकोच वह रही थी। निर्जन, निस्तब्ध, शान्त स्थान था। गङ्गाके किनारेपर एक झोपड़ीमें रोशनीका प्रकाश टिमटिमा रहा था।

एक नीरस, उद्विग्नचित्त व्यक्तिने, जिसका नाम रामदास था, झोपड़ीमें प्रवेश किया। झोपड़ीमें एक साधु बैठा था। उस व्यक्तिने साधुको प्रणाम किया। साधुने कहा—'आओ, प्यारे, बैठो।'

व्यक्ति (रामदास) ने कहा—'महाराज! जीवनमें रस नहीं है, जीवन बोझ हो गया है, इस जीवन-दीपको बुझाना चाहता हूँ।'

साधु—क्या संसारमें तुम्हें कहीं भी राग नहीं रहा है?

व्यक्ति—नहीं, महाराज!

साधु—भगवान्में अनुराग पैदा करो। जीवन रसमय हो जायगा।

व्यक्ति—भगवान्में राग होता नहीं।

साधु—भगवान्में राग उत्पन्न होनेका तुमने कोई उपाय भी किया?

व्यक्ति—हाँ महाराज, जप करता हूँ; लेकिन मन इधर-उधर भटक जाता है।

साधु—तुमने उपाय ठीक नहीं किया; पहले भगवान्की महिमाको जानो, तब जपमें मन लगेगा।

व्यक्ति—महिमाका ज्ञान कैसे हो?

साधु—भगवान्की लीला पढ़ो और सुनो, भगवान्की लीला-का चिन्तन करो—चाहे रामायणके द्वारा, चाहे श्रीमद्भागवतके द्वारा, चाहे किसी भक्तसे लीलाका गुण-गान सुनो! मीरा, तुलसीदास आदि भक्तोंके जीवन-चरित्र पढ़ो। रामायणमें भगवान् श्रीरामकी महिमा भरी पड़ी है तथा श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका सुमधुर गान है। जब महिमा हृदयमें अङ्कित हो जायगी, तब भगवान्में श्रद्धा तथा प्रेम उत्पन्न हो जायगा और प्रेमसे रस मिलेगा। जब उनमें इस प्रकार अनुराग हो जायगा, तब उनकी स्मृति स्वयं जाग उठेगी और जीवन रसयुक्त-आनन्दमय हो जायगा।

व्यक्ति—महाराज! इन पुस्तकोंके पढ़नेमें भी मन नहीं लगता, तब क्या किया जाय?

साधु—अभ्यास तथा नियमसे पढ़ोगे तो मन लगने लगेगा।

रामदासने बड़े ध्यानसे साधुकी बातें सुनीं और वह प्रणाम करके चला गया।

रामदासका एक छोटा-सा मकान गाँवकी सड़कपर था; उसमें एक कमरा था, जिसकी खिड़की सड़ककी तरफ

खुलती थी। यह स्थान ठंडे प्रदेशमें था, बरफीले पर्वत चारों ओर घेरा डाले हुए थे।

रामदासने तुलसीदासजीकी रामायणका पारायण प्रारम्भ किया। नियमसे प्रतिदिन १ घंटे पढ़ना शुरू किया। थोड़े दिनोंमें उसे उसमें कुछ रस मिलने लगा। दो घंटे, तीन घंटे, फिर धीरे-धीरे बारह घंटे प्रतिदिन रामायणका पारायण होने लगा। भगवान् रामकी महिमाका अङ्कुर उसके रागरहित हृदयमें फूटने लगा। धीरे-धीरे अङ्कुरने एक विशाल वृक्षका रूप धारण कर लिया। उसमें प्रेमरूपी फल भी लगने लगे और मिठास देने लगे। कभी वह रोता, कभी वह हँसता और भगवान्‌की महिमामें गद्‌गद हो जाता था।

एक दिन वह शबरीका प्रकरण पढ़ रहा था। उसने पढ़ा कि 'भगवान् राम शबरीके यहाँ पधारे। शबरी अपनेको भूल गयी और बेर भगवान्‌को खिलाने लगी। भगवान्‌के दर्शन न होनेतक शबरी भगवान्‌की प्रतीक्षामें जीवनभर बैठी रही। कितना अटूट धैर्य था और कितनी लगन! प्रतिक्षण उनकी बाट देखती, रास्ता साफ करती। उसके सामने जब भगवान् आ पहुँचे, तब वह उनके प्रेममें सारी सुध-बुध भूल गयी। जब ऐसा रोमाञ्चकारी प्रेममय प्रकरण रामदासने पढ़ा तब वह उसमें तन्मय हो गया और सोचने लगा—'काश आप मेरे यहाँ आते तो मैं भी शबरीकी तरह आपके चरणोंमें हृदयके अन्तस्तलके द्वारसे प्रेम उँडेल देता।' उस छोटे-से कमरेमें वह भगवान् रामके प्रेम-उल्लासमें अपनेको भूल गया। खिड़कीके बाहरसे एक अस्पष्ट, मधुर शब्द सुनायी दिया—'मैं कल आऊँगा।' रामदास यह सुनते ही खिलखिलाकर हँस पड़ा, उसकी खिलखिलाहट खिड़कीसे बाहर जाकर बरफीले पहाड़ोंसे टकरा गयी और उसे लगा कि भगवान् राम बरफीली पहाड़ोंकी चोटीसे उतरकर उसके पास आ रहे हैं।

रात्रिका समय था, चन्द्रदेव अपनी चाँदनीसे सफेद पर्वतश्रेणियोंको दुग्धसे नहला रहे थे। कमरेमें दिया टिमटिमा रहा था। रामदासने रोशनी बुझा दी और सफेद चन्द्रमाकी किरणें बरफीली चोटियोंसे टकराकर उसके कमरेमें छिटकने लगीं। उसे ऐसा लगा कि भगवान् राम ही चन्द्रकिरणोंके प्रकाशमें व्याप्त हो रहे हैं। उसकी सुध-बुध सब विलीन हो गयी।

थोड़े समयके पश्चात् जब उसे चेतना आयी, तब भगवान् श्रीरामके वचनोंकी याद आयी कि 'कल वे आयेंगे।' फौरन उठा, कमरेको स्वच्छ किया। कमरेकी प्रत्येक वस्तुको सुन्दर रीतिसे सजाया। एक छोटेसे तख्तको उनके बैठनेके लिये सुसज्जित किया। बाहर सफेद चमेलीके पुष्प चाँदनीमें खिल रहे थे, उन्हें तोड़ने लगा। उनकी एक माला तैयार की। रात्रि बहुत ठंडी थी। बाहर सड़कपर सफेद बरफकी पतली चादर बिछी हुई थी। उसने अग्नि प्रज्वलित की। पौ फट गयी। सफेद चन्द्रमाकी श्वेत किरणें अदृश्य हो गयीं। निर्मल आकाशमें धीरे-धीरे सूर्यकी किरणें फैलने लगीं।

उसने गायका दूध भगवान् रामके लिये गरम किया और नाना प्रकारके भोजन तैयार किये। फिर प्रसन्न मुद्रामें खिड़कीके पास आकर वह भगवान्‌की प्रतीक्षामें बैठ गया।

खिड़कीके बाहर सड़कको साफ करनेके लिये कुछ मजदूर बरफको हटाने लगे। उनमेंसे एक वृद्ध मजदूर बरफ हटाते-हटाते गिर गया। उसके मुखसे निकला 'हे भगवान्! दया करो।' उसके शरीरपर एक ही पतला कपड़ा था। सर्दीसे उसका शरीर जकड़ गया था। रामदास दौड़कर बाहर आया और उस बूढ़ेको उठाकर अंदर ले आया। आगके पास लिटा दिया। थोड़ा-सा गरम-गरम दूध उसे पिलाया। बूढ़ा अच्छा हो गया और बोला—'भगवान् तुमपर कृपा करें, मैं तुम्हारा एहसान कभी नहीं भुलूँगा।' बूढ़ा चला गया। यह फिर आकर खिड़कीके पास भगवान् रामकी प्रतीक्षामें बैठ गया। दोपहर हो गया। पहाड़की चोटियोंसे बरफ पिघलने लगी। रामदासके मूक नेत्र उधर ही लगे थे कि इतनेमें उसने एक बच्चेकी चीत्कार सुनी, बाहर आया और देखा कि एक स्त्री फटी धोती पहिने एक वर्षके बच्चेको गोदमें लिये उसकी तरफ आ रही है। उसने पूछा—'बहिन! यह बच्चा क्यों रो रहा है?' स्त्रीने कहा—'यह बच्चा भूखा है। इसे बारह घंटेसे दूध नहीं मिला। कल मैंने अपना कम्बल गिरवी रखकर उससे दूध खरीदकर इस बच्चेको पिलाया था। अब मेरे पास कुछ भी नहीं है।' बच्चा सर्दीसे ठिठुर रहा था। रामदासने कहा—'बहिन! अंदर आओ और बच्चेके लिये दूध तैयार है, उसे पिला दो।' स्त्री अंदर आयी। रामदासने बड़े प्यारसे बच्चेको तथा स्त्रीको दूध पिलाया। आगकी ताप दी। बचा हँसने लगा। स्त्री प्रसन्न हो गयी और बोली—'भगवान् तुमपर प्रसन्न हों।' रामदासने एक रुपया देकर कहा कि अपना कम्बल जो गिरवी रक्खा है, उसे छुड़ा लेना। स्त्री चली गयी और यह

रामदास फिर खिड़कीपर बैठकर भगवान् रामकी बाट देखने लगा।

सूर्यकी किरणें बरफीली चट्टानोंसे टकराकर चकाचौंध करनेवाला श्वेत प्रतिबिम्ब बिखेर रही थीं। रामदासकी आँखें अब बरफीले पहाड़ोंको देखनेमें असमर्थ थीं। उसकी निगाह लंबी फैली हुई सड़कपर दूरतक गयी। सूर्यास्तका समय हो रहा था कि रामदासने देखा—एक बुढ़िया अपने सिरपर एक सेवकी टोकरी रक्खे जा रही थी, पीछेसे एक बालकने एक सेव टोकरीमेंसे ले ली। बुढ़ियाने बालकको पकड़ लिया और वह उसे पीटने लगी। रामदासने जब यह देखा तो वह भागकर वहाँ पहुँचा। बालकको छुड़ाकर बुढ़ियासे कहा कि 'तेरे सेवकी कीमत क्या है? मैं देता हूँ। तू इस बालकको छोड़ दे।' रामदासने दो और सेव लेकर बालकको दिये। बालकको प्यार किया और कहा 'अब चोरी मत करना।' बुढ़ियाको सेवोंका मूल्य दे दिया।

बालक बुढ़ियाके पैरोंपर गिर पड़ा, क्षमा माँगी और कहा कि 'मैं यह टोकरी सिरपर रखकर तुम्हारे घर पहुँचा दूँगा' और रामदाससे कहा—'पिताजी! मैंने तुमसे अपूर्व स्नेह प्राप्त किया है। प्रभु अपना स्नेह तुम्हें दें।' बालक टोकरी सिरपर रखकर बुढ़ियाके साथ चला गया। रामदास फिर आकर खिड़कीके पास बैठ गया। रात्रि हो गयी, फिर चन्द्रमाका श्वेत उज्ज्वल प्रकाश फैल गया। तारागण झिलमिलाने लगे। शान्त वायु प्रबल होकर बढ़ने लगी। रामदासने खिड़की बंद कर दी। मुख उदास हो गया।

इतनेमें साधु महाराज आ गये और उन्होंने रामदाससे पूछा कि 'प्यारे! उदास क्यों हो?'

रामदासने कहा—'महाराज! आज भगवान् श्रीराम आनेवाले थे; उनकी प्रतीक्षामें मैं बैठा रहा, वे नहीं आये। इससे मन उदास हो गया।'

साधुने कहा—'भगवान् राम तो नित्य सर्वत्र व्याप्त हैं। वे कहाँ नहीं हैं? उनके आने-जानेका प्रश्न ही कैसा?'

रामदासने कहा—'महाराज! यह तो ठीक है; परंतु वे सगुण, साकार रूप भी तो धारण करते हैं। मेरी उनके मधुर, सगुण रूपके दर्शनकी आकाङ्क्षा थी और उन्होंने कल कहा भी था कि "मैं आज आऊँगा" लेकिन न जाने वे क्यों नहीं आये। इसमें भी कुछ रहस्य मालूम होता है; क्योंकि उनकी वाणी कभी असत्य नहीं हो सकती।'

फिर रामदासने साधुसे भोजन करनेके लिये कहा और उन्हें सुसज्जित तख्तपर बैठाकर भोजन, जो कि रामदासने अपने हाथोंसे बनाया था, प्रेमसे खिलाया और जो माला गूँथी थी, वह उनके गलेमें पहिना दी। साधु भोजन करके बहुत प्रसन्न हुए और रामदासको आशीर्वाद देकर कि 'तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो' चले गये।

रात्रिका फैलाव पूरा हो गया। निस्तब्धता छा गयी। वायुका वेग कम हो गया। रामदासने खिड़की खोल दी। चन्द्रमाकी शीतल किरणें कमरेमें पड़ने लगीं। रामदास शान्त था, निस्तब्ध था। उसके मनकी वृत्तियाँ स्थिर थीं और वह विचार कर रहा था कि 'राम सर्वत्र हैं। मुझमें भी हैं? मैं राममें हूँ। मुझे उनके दर्शन अपनेमें क्यों नहीं होते? वे सगुण साकार भी हैं ही, मुझे वे दर्शन क्यों नहीं देते?' इतनेमें आवाज आयी। 'रामदास! तुम उदास क्यों हो? मैं तो वास्तवमें आया था, किंतु तुमने मुझे पहचाना नहीं। मैंने तुम्हारी सेवाका प्रसाद ग्रहण किया। विचार करो और हृदयके अन्तस्तलके पट खोलो और देखो कि मैं कहाँ नहीं हूँ। वह वृद्ध मजदूर मैं ही तो था, जिसे तुमने बड़े प्यारसे अंदर लाकर सेवा की थी। वह स्त्री और बच्चा भी मैं ही था, जिनको तुमने प्यारसे दुग्ध-पान कराया था। वह बालक भी जिसे तुमने प्यारसे सेव दिये थे, मैं ही था। जिस साधुको तुमने अभी आदरसे भोजन कराया था, वह साधु भी मैं ही था। वह भोजन भी मुझे ही प्राप्त हुआ है। वह हार भी मेरे ही गलेमें गया है। वह सेवा भी सब मुझे ही मिली। तुमसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ और मैं चाहता हूँ कि तुम मेरा नित्यस्वरूप सदैव सर्वत्र देखा करो। तुम सगुण और साकारस्वरूप देखना चाहते हो तो लो, उसे भी देखो।'

ये शब्द रामदासके अन्तस्के आन्तरिक कक्षमें बैठ गये और अकस्मात् एक अद्भुत दिव्य प्रकाश छा गया। रामदासके सामने भगवान् धनुर्धारी श्रीराघवेन्द्रका दिव्य मङ्गलविग्रह प्रकट हो गया। रामदास भावविह्वल हो चरणोंपर गिर पड़ा, मुसकराते हुए भगवान्ने उसे उठाकर सिरपर हाथ रक्खा और कहा 'मैं तुझे दिव्य आलोक देता हूँ, जिससे तू सदा सर्वत्र मुझे देख सकेगा।' यों कहकर भगवान् श्रीराम अन्तर्धान हो गये। दिव्य आलोकमें रामदास रस और आनन्दमें परिपूर्ण हो गया और अब उसे सर्वत्र प्रभु राम के दर्शन होने लगे। वह कहने लगा—'भगवान् राम!' मुझे

क्षमा करना । मैंने आपको उन रूपोंमें पहचाना नहीं । अब तो सर्वत्र आप-ही-आप दिखायी देते हैं । आज यह रहस्य समझमें आया कि 'आप नाम और रूपके पर्देमें छिपे बैठे रहते हैं । सब कुछ आप ही देते हैं । किंतु यह प्रकट नहीं होने देते कि आपका दिया हुआ है और उसके पीछे आपकी नित्य-निरन्तर सत्ता है । यह कैसा अद्भुत रहस्य है ! आज आपने मुझे एक दिव्य नया प्रकाश दिया है । यह आपकी कृपाका प्रसाद है, जो आज कूट-कूटकर मेरे जीवनमें भर गया है । प्रभु आप धन्य हैं । आपकी महिमा धन्य है । आपकी कृपाके प्रसादसे ही नित्य नवरसकी उपलब्धि होती है ।'*

भगवन्नाम-महिमा

(लेखक—सद्गुरु श्रीबाबाजी महाराज, अनुवादक—श्रीविष्णु सावलाराम कर्पे)

मर्ता अमर्तस्य ते भूरि नाम मनामहे । विप्रासो जातवेदसः' ॥

'आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥'

(ऋ० सं०)

ये दोनों मन्त्र ऋग्वेदसंहिताके हैं । इनमें भगवन्नामकी महिमा गायी गयी है । भगवत्-प्राप्तिके सब साधनोंमें नाम-साधन सर्वश्रेष्ठ है । श्रुति-स्मृति-पुराण आदि पुरातन सनातन ग्रन्थोंमें नाममाहात्म्यरूपी विविध मूल्यवान् रत्नोंका भंडार भरा हुआ है । भारतवर्षके प्रातःस्मरणीय साधु-संतोंने भी इस सम्बन्धमें स्वानुभवके बलपर चिरस्मरणीय कार्य किया है । नाम-माहात्म्यकी ध्वजा चिरंतन कालके लिये ऊँची फहराये रखनेका कार्य भी उन्हींकी कृपा तथा अथक परिश्रमका फल है । श्रीतुकाराम महाराज, नामदेव महाराज, एकनाथ महाराज, ज्ञानेश्वर महाराज, नरसिंह मेहता, तुलसीदासजी, सूरदासजी, गुरु नानक, मीराँबाई, कबीर आदि संतोंकी सेवाएँ इस सम्बन्धमें विशेष उल्लेखनीय हैं । भारतवर्ष सदैव इन संतोंका ऋणी रहेगा ।

केवल नामसाधनका अवलम्बन करनेसे अन्य सब साधनोंका फल प्राप्त हो जाता है । अग्निसे जैसे घासका तिनका जल जाता है, वैसे ही भगवन्नाम-स्मरणसे मनुष्यकी समस्त पापराशि भस्म हो जाती है । नामकी महिमा अत्यन्त अलौकिक है । नरको नारायण बनानेकी अद्भुत शक्ति नाममें है । कोई यदि नामकी महिमाको केवल अर्थवाद समझता है तो यह उसका केवल भ्रम है । नाम-महिमा अर्थवाद नहीं है ।

अर्थवादं हरेर्नाम्नि सम्भावयति यो नरः ।
स पापिष्ठो मनुष्याणां नरके पतति स्फुटम् ॥

(कात्यायनसंहिता)

इस वचनमें अर्थवाद माननेका निषेध किया है । ऐसे अनेक निषेधपरक वचन पुराणादि ग्रन्थोंमें हैं । पद्मपुराणमें दस नामापराधोंका वर्णन है । 'नाम्न्यर्थवादो भ्रमः' इसमें नाममहिमाको 'अर्थवाद' मानना भी अपराध माना गया है । ऐसा एक भी आर्ष ग्रन्थ नहीं है, जिसमें नाममहिमाका वर्णन न हो । गीतामें 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' (१० । २५) यह भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं अपने मुखसे कहा है और जपयज्ञकी श्रेष्ठता बतलायी है ।

'जप्येनैव तु संसिध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः ।'

(मनु० २ । ८७)

केवल जपसे भी ब्राह्मणत्वका रक्षण होता है, ऐसा मनुजी कहते हैं । गीताके सत्रहवें अध्यायमें श्रीमद्भगवत्पाद पूज्य श्रीजगद्गुरु शंकराचार्यने और गुरु माऊली श्रीज्ञानेश्वर महाराजने भगवन्नामकी महिमाका बखान करते हुए कहा है कि भगवन्नाम निर्गुण कर्मको सगुण बनाता है तथा अपूर्ण कर्मको पूर्ण करता है ।

परि आश्रय आकाशा । आकाशचि कां जैसा ॥
या नामा नामीं आश्रय तैसा । अभेद असे ॥ ४०३ ॥

(ज्ञानेश्वरी)

श्रीज्ञानेश्वर महाराजका कथन है कि जिस प्रकार आकाशका आश्रय आकाश ही होता है, आश्रित आकाश और आश्रय आकाशमें भेद नहीं किया जाता, वे दोनों अभिन्न हैं, उसी

* कुछ अंश एक अंग्रेजी कथाके आधारपर ।

प्रकार नाम और नामके आश्रयभूत नामी परमात्मा दोनों भेदरहित तथा अभिन्न हैं। 'नाम परब्रह्म वेदार्थी' (शा० १०—२३३)। वेदोंने भी नामको परब्रह्म माना है। इस प्रकार भगवन्नामका महत्त्व जानकर ही हमारे ऋषि-मुनियोंने हमारे सब विधि, आचार, कर्मके आदि तथा अन्तमें 'विष्णवे नमः' तीन बार उच्चारण करनेकी प्रथा रक्खी है; परंतु बड़े खेद तथा दुर्दैवकी बात है कि आज हमारे समाजके नेता तथा अनेक विद्वान् भी भगवन्नाम-स्मरणको अर्थवाद ही मानते हैं।

अर्थवादकी रूपरेखा—जो वाक्य अर्थवादके लक्षणके अनुरूप हो, उसीको अर्थवाद कहा जा सकता है, केवल किसीके कथनमात्रसे नहीं। नाम-जप-यज्ञसे अन्य यज्ञकी श्रेष्ठता माननेवाले 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' भगवान्‌की इस उक्तिको 'अर्थवाद' कहते हैं। पर ऐसा माननेपर तो सम्पूर्ण गीताके दशम अध्याय—विभूतियोगको ही अर्थवाद कहना पड़ेगा। पुराणोंमें नाम-महिमा भरी पड़ी है। नाम-महिमाको अर्थवाद समझना अत्यन्त पाप है, ऐसा भी वहाँ स्पष्ट उल्लेख है। अर्थवाद पारिभाषिक शब्द है। इसका स्पष्टीकरण पूर्वमीमांसामें दिया है। पूर्वमीमांसामें वेद-वाक्य दो प्रकारके माने गये हैं—एक मुख्य वाक्य और दूसरा अवान्तर वाक्य। वेदोंमें कुछ आदेश प्रवृत्तिपरक हैं तो कुछ निवृत्तिपरक हैं। मानवको कुछ कर्म करनेका आदेश है तो कुछ कर्म करनेका निषेध है। इस प्रकारके विधि-वाक्योंका पाप-पुण्यरूप फल भी बतलाया गया है। ऐसे विधि-वाक्योंको ही मुख्य वाक्य कहा है। इसके विपरीत जिन वाक्योंमें इस प्रकारके विधिका कोई कथन नहीं है और जो केवल विधिसे सम्बन्धित यजमान, देवता, सामग्री, द्रव्य आदि उपयुक्त बातोंका वर्णन करते हैं, उन्हें अवान्तर वाक्य कहते हैं। इन अवान्तर वाक्योंको ही पूर्वमीमांसामें 'अर्थवाद' कहा है। अवान्तर वाक्यमें विधिका कथन नहीं होता। परंतु उनमें विधि-वाक्यकी प्रशंसा होती है और वे मानवको कर्ममें प्रवृत्त करते हैं; अतएव वे निरर्थक नहीं हैं, विधि-वाक्योंसे उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। सारांश, अर्थवादमें कोई विधि-आज्ञा नहीं होती तथा न कोई स्वतन्त्र फल-प्राप्तिका कथन होता है। 'अर्थवाद'का स्पष्टीकरण इस प्रकार पूर्वमीमांसामें किया गया है।

अर्थवादके प्रकार—वेदोंमें अर्थरूप वाक्योंके तीन ही प्रकार हैं—(१) अनुवादरूपवाक्य, (२) गुणरूप वाक्य और (३) भूतार्थरूप वाक्य।

(१) अनुवादरूप वाक्य—श्रुतिमें कुछ ऐसे वाक्य हैं, जिनके कथनका अनुभव प्रत्यक्षरूपसे या प्रत्यक्ष प्रमाणसे मानव कर सकता है; ऐसे श्रुति-वाक्य 'अनुवादरूप' अर्थवाद कहे जाते हैं। उदाहरणार्थ—

अग्निर्हिमस्य भेषजम्।

—यह श्रुति-वाक्य है। अग्निसे शीतका निवारण होता है, इसका अनुभव प्रत्यक्ष प्रमाणसे होता है। श्रुति-वचन केवल प्रत्यक्ष अनुभवका पुनः उच्चार है, अनुवाद है; इसलिये यह वाक्य 'अनुवादरूप' अर्थवाद है।

(२) गुणरूप वाक्य—वस्तुको आँखोंसे देखते ही जिन गुणोंका बोध होता है, उसके विरुद्ध गुणोंका बोध उस वस्तुके वर्णनसे होता है, तब उस वाक्यको गुणरूप कहते हैं। जैसे—'यजमानः प्रस्तरः' यह श्रुति-वाक्य है। इसका शब्दार्थ है कि यजमान पत्थर है। परंतु वास्तविकतामें यजमान पत्थर नहीं होता। यज्ञमें चैतन्ययुक्त मानव यजमानके रूपमें दिखायी देता है। अतः यह श्रुति-वाक्य प्रत्यक्षका विरोधक होनेसे उसे 'गुणरूप' अर्थवाद कहते हैं।

(३) 'भूतार्थरूप वाक्य—

'आदित्यः पुरुषो भूत्वा कुन्तीमुपजगाम ह'

—यह श्रुतिवाक्य भूतार्थरूप वाक्य है। 'भूतार्थरूप' अर्थवादमें इतिहासका कथन होता है।

उपर्युक्त अर्थवादसम्बन्धी विवेचनसे यह स्पष्टरूपसे ज्ञात होता है कि नाम-महिमा अर्थवाद नहीं है। यदि उसे अनुवादरूप अर्थवाद कहें, तो वह प्रत्यक्ष प्रमाणगम्य नहीं है। नाममाहात्म्यसम्बन्धी शास्त्र-वचन प्रत्यक्ष अनुभवके अनुवादमात्र नहीं हैं। नाममहिमाको गुणरूप अर्थवाद भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि गुणवादात्मक अर्थवादमें प्रत्यक्ष प्रमाणके विरुद्ध प्रतिपादन होता है। परंतु नाममाहात्म्यमें प्रत्यक्ष प्रमाणके विरुद्ध भी कथन नहीं होता। अन्तमें भूतार्थवादकी कसौटीपर परखकर देखें तो भी नाममहिमा अर्थवाद सिद्ध नहीं होती। कारण, भूतार्थवादमें केवल ऐतिहासिक घटनाओंका वर्णन होता है। अर्थवादमें विधिसे प्राप्त फलका वर्णन स्वतन्त्र रूपसे नहीं होता।

परंतु नाम-शास्त्रमें नाम-स्मरणकी विधि है तथा उससे प्राप्त स्वतन्त्र फलका भी प्रतिपादन है। नाम-स्मरणसे सब पापोंका क्षालन होता है तथा अन्तमें भगवत्प्राप्ति भी होती है। इसलिये शास्त्र-विचारसे भी भगवन्नामस्मरण अर्थवाद नहीं है।

वचन-विरोध—नाम-माहात्म्य-सम्बन्धी संतोंके वचनोंका यदि परिशीलन किया जाय तो यह दिखायी देगा कि उनके एक दूसरेके कथनमें विरोध है। एक स्थानपर उनका कथन है कि केवल भगवन्नाम-स्मरणमात्रसे सब पापोंका क्षालन होता है और अन्तमें ईश्वर-साक्षात्कार होता है; परंतु अन्य स्थानपर कुछ संतोंका इसके विपरीत कथन है। वे कहते हैं कि श्रद्धा और भाव-विरहित भगवद्भजन केवल जल्पना है, जिह्वाको व्यर्थ कष्टमात्र है। परंतु ऊपरके शास्त्रीय विवेचनसे यह सिद्ध है कि नाममाहात्म्य अर्थवाद नहीं है। अतः संतोंके ये परस्परविरोधी कथन वास्तविकरूपसे विरोधी नहीं हैं, वे साधारण व्यक्तिको विरोधी प्रतीत होते हैं। मूलतः उनमें समन्वय है। अब इस समन्वयकी थोड़ी चर्चा करें।

वचन-संगति—भगवन्नामस्मरणसे दो प्रभावी फल प्राप्त होते हैं—समस्त कृत पापोंका क्षालन होता है और अन्तमें भगवत्-प्राप्ति होती है। नामस्मरण श्रद्धायुक्त अन्तःकरणसे करो या अश्रद्धासे करो, उससे प्रथम फलकी प्राप्ति होती है, यानी सब पापोंका क्षय होता है। श्रीतुकाराम महाराजका वचन—

चालू केलासी मोकळा। म्हणे विठ्ठल वेळोवेळा॥ १॥
तुज पापचि नाही ऐसे। नाम घेता जवळी वसे॥ २॥

इस अभंगमें महाराजने यह बतलाया है कि नामस्मरणमें पापक्षालन करनेका कितना अद्भुत सामर्थ्य है! जो विषयासक्त हैं, किसी प्रकारका संयम नहीं रख सकते, ऐसे पामर जीवोंके लिये यह उपदेश है। हे मानव! तू संसारमें चाहे जैसा बर्ताव कर, परंतु समय-समयपर भगवान्का नाम अवश्य लेता रह। इससे तुझे यह लाभ होगा कि संचित पापोंका क्षय होगा और परिणामवश तू दुर्गतिसे बचेगा।

नामस्मरणकी लगन लगनेसे मनुष्यकी वृत्ति बदलती है। मानव धीरे-धीरे अधार्मिकसे धार्मिक बनता है। ऐसा संत-महात्माओंका प्रत्यक्ष अनुभव है।

जान आदि कबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥
(रा० च० मा०)

नामस्मरणसे पापक्षय होता है, परंतु तत्काल भगवत्-प्राप्ति नहीं होती। उसके लिये अधिक प्रयत्नोंकी आवश्यकता है। नामस्मरणके साथ सदैव श्रद्धा-भक्तिपूर्वक इष्ट देवताका ध्यान भी उतना ही आवश्यक है।

नाम रूपा नहीं मेळ। अवघा वाचेचा गोंधळ'
(एकनाथ)

रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना।
(रा० च० मा०)

इंद्रिया सी नेम नाहीं। मुखीं नाम करीळ काई॥
(एकनाथ)

मुखीं नाम त्या काम बाधू शके ना
(रामदास ८७)

इन संतोंकी उक्तियोंमें केवल विरोधाभास है। वास्तवमें नामस्मरणका महत्त्व ही उनमें प्रतिपादित है। भगवन्नाम-स्मरणसे पापक्षय नहीं होता, ऐसा किसीका भी कथन नहीं है। उनकी उक्तिका आशय यह है कि रामनामके साथ-साथ यदि पापकर्म भी करता रहे तो उसके पूर्वकृत पापोंका क्षालन होगा, परंतु नामस्मरणके बाद किये हुए पापोंका परिणाम भविष्यमें भोगना ही पड़ेगा। पाप करते रहनेसे चित्त-शुद्धि नहीं हो सकती और जबतक चित्त-शुद्धि नहीं होती, तबतक भगवत्प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः मनुष्य-जीवनका अन्तिम लक्ष्य जो ईश्वरसाक्षात्कार है, उसके लिये नाम-स्मरणके साथ मनुष्यको भगवान्का ध्यान भी करना चाहिये। भगवान्के ध्यानमें मनको संलग्न करना कठिन है—

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।
(गीता ६। ३४)

भगवान्ने ही मनको दुर्निग्रह और चल माना है। इसलिये उसे काबूमें लानेके लिये अभ्यास और वैराग्य—ये दो उपाय बतलाये गये हैं। मन सांसारिक विषयोंमें लिपटा हुआ रहता है, अतः प्रथम धीरे-धीरे नामस्मरणके साधनसे उसकी यह आसक्ति कम करनेकी कोशिश करनी चाहिये। मनको चिन्तन करनेके लिये विषय चाहिये, अतएव सांसारिक विषयोंके स्थानपर उसे भगवत्-चिन्तन करनेकी आदत शनैः-शनैः डालनी चाहिये—यही अभ्यास है। परिणामवश कालान्तरसे

साधकके मनमें विषय-वैराग्य और भगवत्प्रेमका उदय होने लगता है। अतः अविरत भगवन्नाम-स्मरण होना चाहिये। इस मार्गका अवलम्बन करनेसे कुछ समय अवश्य लगता है, परंतु इच्छित फल निश्चितरूपसे प्राप्त होता है।

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।

(गीता ६। ४५)

इस कालावधिको कम करनेका एक ही उपाय है— इन्द्रियनिग्रह और मनोनिग्रहपूर्वक भगवन्नाम-स्मरण।

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥

अजामिलकी कथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है। पुत्रनिमित्तसे मरते समय उसके मुखसे भगवान्‌का नाम निकला। केवल अन्त समयमें भगवन्नामोच्चार करनेसे अजामिलके सारे पाप नष्ट हो गये और दुष्प्रवृत्तिका नाश होकर उसमें सत्-प्रवृत्तिका उदय हो गया। मोक्षमार्ग उसके लिये सुलभ हो गया। यदि मरते समय उसकी दृष्टि पुत्रकी ओर न होकर परमात्माकी ओर होती तो सकृन्नामस्मरणसे भी उसे निश्चितरूपसे मोक्षकी प्राप्ति होती।

अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(गीता ८। ५)

मरणीं जया जे आठवे। तो तेचि गती ते पावे॥

(ज्ञानेश्वरी ८। ७६)

नाम-स्मरणसे भगवत्प्रेम उत्पन्न होता है। परंतु इसकी प्राप्ति आसानीसे नहीं होती। उसके लिये विशेष साधनकी आवश्यकता है।

बहुला सुकृतांची जोडी। म्हणुनि विठ्ठली आवडी॥

(तुकाराम)

अनेक जन्मोंके पुण्यसे भगवत्प्रेमका उदय होता है। भगवत्प्रेमके लिये साधकको वीर पुरुषके सदृश प्राणार्पण करनेकी भी तैयारी रखनी पड़ती है। यही भक्तिमार्गका वीर-रस है। नामस्मरणसे ही साधक धीरे-धीरे इस अवस्थातक पहुँच सकता है।

निष्ठवंत भाव भक्ताचा स्वधर्म। निधार हे वर्म चुको नये॥

अतः साधकको दृढ़निश्चयी तथा निष्ठावान् भगवद्भक्त होना चाहिये। उसका भगवच्चरणारविन्दमें नितान्त निष्ठा, श्रद्धा एवं अनन्य भक्ति-प्रेम होना चाहिये।

निश्चयाचे बळ। तुका म्हणे तेचि फळ॥

(तुकाराम)

तुकाराम महाराजका कहना है कि कोई भी काम करनेका दृढ़ संकल्प तथा दृढ़ निश्चय करनेपर उस कार्यका इच्छित फल कर्ताको अवश्यमेव मिलता है। यहाँ यह स्पष्ट करा देना आवश्यक है कि संकल्पित कार्यमें सफलता प्राप्त होते ही कर्ताका अहंकार जाग्रत् हो उठता है। अहंकार-बुद्धि भगवत्प्रेमके मार्गमें एक बड़ी भारी बाधा है। अतः इससे सदा बचे रहकर साधकको नित्य-निरन्तर अहंकाररहित रहना चाहिये।

दर्शनमें ही सुख है

नैना नाहिनै ये रहत।
जदपि मधुप ! तुम नँदनंदन कौं निपटहिं निकट कहत।
हृदय माँझ जो हरिहि बतावत, सीखौ नाहिं गहत॥
परी जु प्रकृति प्रगट दरसन की, देख्यौइ रूप चहत।
सूरदास प्रभु बिन अवलोके. सुख कोई न लहत॥

—सूरदास

धार्मिक भावनाके प्रचारकी आवश्यकता

(लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन)

सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री टा० स्टी० इलियटका कहना है कि प्राचीनकालमें जब किसी धर्मका पतन होता था, तब साथ-ही-साथ किसी दूसरे धर्मका उत्थान देखनेमें आता था, परंतु आजके युगकी यह विशेषता है कि सभी धर्म पतनको प्राप्त हो रहे हैं और उनका स्थान लेनेके लिये कोई नया या पुराना धर्म नहीं आ रहा है।

'केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ़ अमेरिकन लिट्रेचर'ने आधुनिक युगमें ईसाइयोंकी धार्मिक भावना शिथिल पड़ जानेके तीन कारण बतलाये हैं। १—नयी खोजें, जिन्होंने बाइबिलमें वर्णित बहुत-सी बातोंको मिथ्या सिद्ध कर दिया है और इस प्रकार उसके स्वतःप्रमाण होनेमें संदेह उत्पन्न कर दिया है। २—मार्क्स और डार्विनके सिद्धान्तोंका व्यापक प्रचार। ३—ईसाई धर्मकी संकीर्णता। देखना है, ये सब बातें आर्य-धर्मपर कहाँतक लागू होती हैं।

बाइबिलके बहुत-से सिद्धान्त—उदाहरणतः यही कि सृष्टि केवल ६००० वर्ष पुरानी है, मिथ्या सिद्ध हो चुके हैं; परंतु आर्य आर्ष ग्रन्थोंके सिद्धान्त—जैसे चन्द्रमाकी समुद्रसे उत्पत्ति, वायुयान, ब्रह्मास्त्र, अन्तर्लोकयात्रा, वनस्पतियोंमें जीवका होना, समस्त जड पदार्थोंके पीछे एक ही तत्त्वका होना—अब नयी खोजोंके द्वारा सत्य सिद्ध होते जा रहे हैं। अतः नयी खोजोंसे आर्य-धर्मको कोई भय नहीं।

साम्यवादके जन्मदाता कार्लमार्क्स (१८१८–८३) जन्मतः यहूदी थे। वे अर्थको ही मनुष्यकी समस्त प्रवृत्तियोंका मूल मानते हैं। उनके मतानुसार कुछ थोड़े-से धूर्त लोग अर्थोपार्जनके समस्त साधनोंपर अपना अधिकार करके शेष बहुसंख्यक जनताको पशुओं-जैसा जीवन व्यतीत करनेपर विवश करते हैं। इस प्रकार समाज 'शोषक' और 'शोषित' —दो भागोंमें बँट जाता है। अतः शोषितोंको चाहिये कि वे संगठित होकर शोषकोंको उखाड़ फेंकें और सारी शासन-सत्ता अपने अधिकारमें कर लें। मार्क्सका यह सब कहना नितान्त भ्रामक है। अर्थ मनुष्यकी मूल प्रवृत्ति नहीं है। वह केवल कामनाओंकी पूर्तिका एक मुख्य साधन है, साध्य नहीं। घोर नास्तिक और भोगवादी भी काम, विषय-प्रेम और अहंके चक्करमें अर्थको प्रसन्नतापूर्वक तिलाञ्जलि दे देते हैं और न समाज शोषक और शोषितके आधारपर ही दो दलोंमें बँटा होता है। धर्म, जाति और राष्ट्रीयताको लेकर एक दलके शोषक और शोषित मिलकर दूसरे दलके शोषकों और शोषितोंके विरुद्ध खड़े हो जाते हैं। इसी कारण मार्क्स धर्म, जाति और राष्ट्रीयताके विरुद्ध है; क्योंकि इनके कारण सारे शोषितोंका एक अलग संगठन नहीं बन पाता।

साम्यवादियोंका यह भी कहना है कि धर्म और धर्माचार्योंने सदैव ही शोषकवर्गका साथ दिया है, जब कि वस्तुस्थिति यह है कि धर्म ही सदैव सत्ताधारियोंके अन्यायके विरुद्ध लड़ता आया है। भारतमें मुगल अत्याचारके विरुद्ध उठनेवाले राजपूत, मरहठा, सिक्ख और जाट विद्रोह-धर्मकी पृष्ठभूमिपर खड़े थे। सन् १८५४ की क्रान्तिके पीछे प्रबल धार्मिक भावना काम करती थी। वर्तमान स्वराज्य आन्दोलनके जन्मदाता लोकमान्य पण्डित बाल गङ्गाधर तिलककी धर्म-निष्ठासे कौन परिचित नहीं होगा। महाराष्ट्र और बंगालके क्रान्तिकारी गीता हाथमें ले-लेकर फाँसीपर चढ़ते थे। इंगलैंडका प्रजातन्त्र-आन्दोलन वहाँके धार्मिक आन्दोलनका एक अङ्ग था। अमेरिकामें दासप्रथाविरोधी आन्दोलन धार्मिक भावनासे उठा था। महात्मा गांधीके आध्यात्मिक गुरु थोरोने तो दासप्रथाके विरुद्ध सत्याग्रहतक किया था और 'सिविल डिसओबिडियन्स' नामका अपना प्रसिद्ध निबन्ध लिखा था (१८४७), 'अङ्किल टाम्स कैबिन' नामकी जिस पुस्तकने दासप्रथाके विरुद्ध सबसे अधिक लोकमत जाग्रत् किया, उसकी लेखिका श्रीमती हैरियर बीचर स्टो (१८११–९६) इतनी संयमशील और धर्म-परायण थीं कि वे नाटक देखनातक पाप समझती थीं[1] और बड़ी कठिनाईसे उन्होंने अपनी पुस्तकके आधारपर नाटक खेले जानेकी आज्ञा दी थी। रूसमें जारके अत्याचारोंके विरुद्ध जो आन्दोलन चले थे, उनका प्रारम्भिक नेतृत्व पादरियोंने किया था[2]।

धार्मिक अर्थव्यवस्था साम्यवादसे भिन्न है। वह मुख्यतः दो सिद्धान्तोंपर आश्रित है—जो व्यक्ति समाजकी जितनी

---

१. गाइड टु ग्रेट प्लेज: लेखक जोजेफ़ शिप्ले।

२. ए ट्रेज़री ऑफ़ ग्रेट रिपोर्टिंग: सम्पादक लुई श्नाइडर।

सेवा करे, उसे उतना ही समाजसे लेनेका अधिकार है और क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति न तो समाजकी एक-सी सेवा ही करता है और न सभी व्यक्तियोंकी सेवा करनेकी क्षमता ही एक-सी होती है, अतः विषमता समाजकी एक स्वाभाविक स्थिति है। परंतु यह विषमता पूँजीवादद्वारा उत्पन्न विषमतासे सर्वथा भिन्न है। पूँजीवादने जिस विषमताको जन्म दिया है, वह अस्वाभाविक और अन्यायपूर्ण है; क्योंकि इस व्यवस्थामें जो समाजकी कुछ भी सेवा नहीं करते वे तो लखपति और करोड़पति बने हुए हैं और जिनकी सेवाके बलपर समाज जीवित है, वे भूखों मरते हैं। परंतु इस अस्वाभाविक और अन्यायपूर्ण विषमताकी चिकित्सा उतनी ही अस्वाभाविक और अन्यायपूर्ण समता नहीं है । धार्मिक अर्थ-व्यवस्थाका दूसरा सिद्धान्त है संयम, त्याग और दान, जिसे न तो पूँजीवाद मानता है न साम्यवाद। आजकी अर्थव्यवस्थामें सभी लोग अपनी अनियन्त्रित कामनाओंकी पूर्तिके निमित्त अधिकाधिक अर्थसंचयमें लगे रहते हैं। जो सफल हो जाते हैं, वे शोषक कहलाते हैं और जो सफल नहीं हो पाते, वे शोषित । साम्यवादी सरकारमें शोषितोंके नामपर सारी सत्ता मुट्ठीभर नेताओंके हाथमें आ जाती है और संयमके अभावमें ये नेता भी अधिकाधिक अर्थ-संचय तथा भोगवासनाकी पूर्तिमें लग जाते हैं और फिर वही चक्र चल पड़ता है।

मार्क्सके सिद्धान्त कितने ही खोखले क्यों न हों, जबतक समाजमें आजकी अन्यायपूर्ण विषमता बनी रहेगी और लोगोंकी भोग-कामनाएँ इसी प्रकार अनियन्त्रित रहेंगी, तबतक साम्यवादके प्रति जनताका आकर्षण बना रहेगा। समाजवादसे आशा बँधी थी कि वह साम्यवाद और पूँजीवाद दोनोंके चंगुलसे जनताको छुड़ानेमें सफल होगा परंतु धर्माश्रित न होनेके कारण समाजवादी व्यवस्था भी उत्पीड़नमें परिवर्तित हो गयी। समाजवादके नामपर जनताके स्वतन्त्र व्यवसायोंको नष्ट करके अर्थोपार्जनके सारे साधनोंपर राज्य अधिकार कर लेता है और शनैः-शनैः सारी जनताको वेतन-भोगी बननेपर विवश करता है। समाजवादी शासनमें वेतन सोने-चाँदीमें न मिलकर कागजी मुद्राके रूपमें मिलता है, जिसे समाजवादी सरकार अंधाधुंध छापकर वस्तुओंके भाव आकाशमें पहुँचा देती है, जिससे वेतनभोगी जनता भुखमरीके निकट आ जाती है और समाजवादी सरकार सारा दोष व्यापारियोंके सिर मढ़कर अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझ लेती है।

सर चार्ल्स राबर्ट डार्विन (१८०९-८२) इंगलैंडके निवासी थे। वे बनना चाहते थे पादरी, परंतु बन गये वैज्ञानिक-विकासवादके जन्मदाता। डार्विनके अनुसार जड ही विकास करते-करते वनस्पति, जलचर, थलचर और वानर होता हुआ मानवके रूपमें आया है । डार्विनके विकासवादने प्राचीनताके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न की है, जो सभी धर्मोंके लिये भयावह सिद्ध हुई है; परंतु डार्विनके सिद्धान्त केवल अनुमान हैं, वे सिद्ध नहीं हैं । अनेक प्रश्नोंका डार्विनके यहाँ कोई उत्तर नहीं। क्या आज भी वानर मानव बनता जा रहा है ? क्या मानव भी विकसित होकर किसी भूत या देव-जैसी अन्य योनिको प्राप्त होगा ? सभी वानर मानव क्यों नहीं बने ? यह विकास कभी रुकेगा या नहीं ? एक विशिष्ट समयपर ही जडमें क्यों परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ ? इत्यादि । पूज्यपाद स्वामी करपात्रीजीने अपनी अमूल्य कृति 'मार्क्सवाद और राम-राज्य' में मार्क्स और डार्विनका बहुत ही युक्तियुक्त खण्डन किया है। ऐसी पुस्तकोंका व्यापक प्रचार होना चाहिये।

कुछ विद्वान् डार्विनके विकासवादसे उल्टे ईश्वर और धर्मकी सत्ता सिद्ध करनेमें सहायता लेते हैं। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिकाके अनुसार डार्विन सृष्टि-रचनाके पीछे एक महान् उद्देश्य मानता है विकास और क्योंकि जड निरुद्देश्य होता है, उद्देश्य केवल चैतन्यमें ही हो सकता है; अतः सिद्ध हुआ कि सृष्टि-रचनाके पीछे कोई चैतन्य सत्ता अवश्य है।

कुछ विद्वान् धार्मिक भावनाओंको आघात पहुँचानेवालोंमें मार्क्स और डार्विनके साथ-साथ फ्रायडका भी नाम लेते हैं।

सिगमण्ड फ्रायड (१८५६–१९३९) वायनाके एक यहूदी डाक्टर थे। वे कामको ही मनुष्यकी मूल प्रवृत्ति मानते हैं। उनके सिद्धान्तोंने अनाचारको बहुत प्रोत्साहन दिया है; परंतु बहुत-से विद्वान् कहते हैं कि फ्रायड अनाचारके समर्थक नहीं थे। कोलम्बियाके समर्थ समालोचक श्री० लियोनस ट्रिलिंग (१९०५—) लिखते हैं कि फ्रायडने केवल यह कहा है कि मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति पापकी ओर होती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे पापका

समर्थन भी करते हैं। 'If Freud discovered the darkness for Science he never endorsed it.'

फ्रायडका आशय चाहे कुछ भी रहा हो, नयी मनोवैज्ञानिक खोजोंने उनके तथाकथित सिद्धान्तोंकी धज्जियाँ उड़ा दी हैं। सम्भवतः इसी कारणसे 'केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ अमेरिकन लिट्रेचर'ने धार्मिक पतनके कारणोंमें उनका नाम नहीं गिनाया।

ईसाई-धर्मके अनुसार कोई भी व्यक्ति—चाहे वह कितना ही सदाचारी, त्यागी, तपस्वी और लोकसेवक क्यों न हो—जबतक प्रभु ईसापर विश्वास नहीं लाता, मुक्ति नहीं पा सकता। ईसाई-धर्म-प्रचारक साम, दान, दण्ड, भेद—किसी-न-किसी प्रकारसे सारे विश्वको ईसाई बनानेकी चेष्टा करते रहते हैं* और दूसरे धर्मोंको अनादरकी दृष्टिसे देखते हैं। के० हि० आफ अमेरिकन लि० के अनुसार ईसाई-धर्मकी ये बातें बढ़ती हुई विश्वबन्धुत्वकी भावनाके कारण लोगोंको खटकने लगी हैं; परंतु इस विषयमें हिंदूधर्म बहुत उदार है। वह अपना धर्म दूसरोंपर नहीं लादता और दूसरे धर्मों, उनके मान्य ग्रन्थों, उपासना-गृहों एवं महापुरुषोंको भी समुचित मान देता है और प्रत्येक धर्मके अनुयायियोंको पूरी-पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता।

प्रसिद्ध साहित्यिक श्रीटामस स्टीर्न्स इलियट (१८८८-१९६५) धर्मके पतनका एक बड़ा कारण आधुनिक साहित्यकी धर्म और सदाचारहीन वृत्ति बतलाते हैं। परंतु यूरोपका साहित्य तो पहले भी धर्म एवं सदाचारसे शून्य व्यक्तियोंके हाथोंमें रहा है। प्रसिद्ध इटैलियन साहित्यिक अरिथोस्टोको दुराचारके अपराधमें जीवित जलाया गया था। फ्रान्सीसी उपन्यासकार बालज़क और जर्मन कवि गेटेकी व्यभिचार-लीलाएँ प्रसिद्ध ही हैं। शेक्सपियरकी ही टक्करके और उनके ही समकालीन एक अंगरेजी नाटककार मार्लो एक सरायमें किरायेके पैसोंपर लड़ते हुए मारे गये और दूसरे बेन जानसन एक अभिनेताकी हत्याके अपराधमें वर्षों बंदी-गृहमें सड़ते रहे। अंगरेजीमें निबन्ध-साहित्यकी नींव डालनेवाले बेकन घूसके अपराधमें जेल गये। प्रसिद्ध अमरीकी कवि वाल्ट ह्विटमैनका आचरण इतना लोकनिन्दित था कि सम्भ्रान्त अमरीकी महिलाएँ अपने घरोंमें उनका आना-जाना अच्छा नहीं समझती थीं। विश्व-साहित्यके ज्योतिःस्तम्भमें चमकनेवाले आस्कर वाइल्ड दुराचारके अपराधमें जेल गये और फिर आत्मघात करके मर गये। इस्लाममें भी साहित्य मुख्यतः इस्लाम-विरोधी रहा है। कट्टर मुसल्मान काव्यसे इतना चिढ़ते हैं कि औरंगजेबने कविता करना बंद करा दिया था। दारुल अलूम देवबंदसे जो मुहम्मद साहबकी जीवनी छपी है, उसमें उनका एक गुण यह भी बतलाया गया है कि वे कभी कविता-पाठ नहीं करते थे।

हमारे कहनेका यह आशय नहीं है कि यूरोप व इस्लाममें ऐसे साहित्यिक हुए ही नहीं, जिनकी लेखनीने धर्म और सदाचारको बल दिया हो। डैंटे, शेक्सपियर, रस्किन, कार्डिनलन्यूमन, टालस्टाय, एमर्सन, थोरो और स्वयं इलियट तथा शेख सादी, मौलाना रूम तथा और भी बहुत-से साहित्यिक हैं, जिन्होंने अपनी लेखनीद्वारा जनताको ऊँचा उठानेका प्रयत्न किया; परंतु मुख्य साहित्यिक-धारा धर्म और सदाचारकी विरोधिनी ही रही है। प्राचीन कालमें क्योंकि शिक्षा धर्माचार्योंके अधीन थी, अतः धर्महीन साहित्यको पाठ्यक्रममें स्थान नहीं था और इस कारण उसका दुष्परिणाम देखनेमें नहीं आता था।

यह हिंदूधर्मकी ही विशेषता है कि उसका साहित्य धर्मका विरोधी न रहकर सदैव धर्म और सदाचारको बल प्रदान करता आया है। हमारे अधिकांश साहित्यिक भगवद्भक्त, साधु और संन्यासी रहे हैं। धर्म और साहित्यका सामञ्जस्य स्थापित करनेमें सफल होनेके कारण ही सम्भवतः आर्य संस्कृति अबतक जीवित है। हमारी संस्कृति साहित्यिक कसौटीपर खरी उतरी है, परंतु अब पिछले ५० वर्षोंसे विदेशी कुसंगतिके कारण हमारा साहित्य भी धर्म और सदाचारका विरोधी होता जा रहा है। उच्चकोटिके सरस एवं कलापूर्ण साहित्यमें धर्मानुकूलसाहित्यके नामसे केवल प्राचीन साहित्य है। उसके व्यापक प्रचारकी आवश्यकता है, परंतु इतनेसे ही काम नहीं चल जायगा। नवीन मौलिक साहित्यके सृजनकी भी उतनी ही आवश्यकता है। इलियटके अनुसार जिस जातिमें मौलिक साहित्यके सृजनकी क्षमता नहीं रहती, वह अपने प्राचीन साहित्यसे भी हाथ धो बैठती है।

साहित्यके अतिरिक्त मनोरञ्जनके साधनोंका भी धर्मके साथ समन्वय करना होगा। इस्लाम मनोरञ्जनके साधनोंसे

* आजकल तो ईसाई बनानेका कार्य बहुत बड़े पैमानेपर हो रहा है। करोड़ों रुपये तथा हजारों आदमी येन-केन प्रकारेण ईसाई मतके प्रचारमें लगे हैं और लाखों भारतीयोंको ईसाई बना रहे हैं इसका परिणाम बहुत ही भयानक होगा।

कभी सामञ्जस्य स्थापित नहीं कर सका । नृत्य, गायन, वाद्य, नाटक—सब इस्लाममें निषिद्ध हैं । यूरोपमें जब ईसाई-धर्म फैला तो उसने प्रचलित नाटक और रङ्ग-मञ्चका विरोध किया । फलस्वरूप पुराने नाटक बंद हो गये और नये धार्मिक नाटक लिखे जाने लगे; परंतु ईसाई-धर्मका प्रचार करनेवाले ये नये नाटक न तो रोचक ही थे न कलापूर्ण । धीरे-धीरे नाटक फिर स्वतन्त्र हो गया । वह पहले सेक्युलर हुआ और फिर धर्मविरोधी होने लगा । सोलहवीं-सत्रहवीं शतीमें फिर यूरोपमें, विशेषतया इंगलैंडमें नाटकविरोधी अभियान चला और १६२९ में इंगलैंडमें जब प्रथम बार एक नाटकमें कुछ महिलाओंने अभिनय किया, तब वहाँकी जनता बुरी तरहसे भड़क उठी. The idea of women appearing on the stage was new and shocking to English spectators— अँगरेज जनताके लिये स्त्रियोंको अभिनय करते देखना एकदम असहनीय था । (उस समयतक यूरोपमें स्त्रियोंका अभिनय भी पुरुष ही करते थे) और २ सितम्बर १६४२ की विज्ञप्तिमें पार्लमिण्ट-ने नाटक खेलना दण्डनीय ठहराया । १६४८ में इंगलैंडके सारे नाटकघर ढहा दिये गये और अभिनेताओंको पकड़-पकड़कर सार्वजनिक रूपसे कोड़े लगाये गये और प्रत्येक दर्शकपर ६ शिलिंग जुर्मानेका नियम बना । १७८७ से पूर्व संयुक्त राष्ट्र, अमरीकामें भी नाटक खेलना दण्डनीय अपराध था । धीरे-धीरे नाटकपर लगे ये सारे प्रतिबन्ध हट गये और शनैः-शनैः वह फिर अधर्म और दुराचारके प्रचारमें लग गया ।

आर्य संस्कृतिकी एक विशेषता यह भी है, इसने मनोरञ्जन-के साधनोंका भी धर्मके साथ सामञ्जस्य स्थापित करनेमें सफलता प्राप्त की है । हमारे यहाँ नाटकका उद्देश्य देवताओं-की प्रसन्नता प्राप्त करना बतलाया गया है; परंतु आज मनोरञ्जनका मुख्य साधन सिनेमा है, जो अधर्म और दुराचार-के प्रचारमें आकाश-पाताल एक किये हुए है । सिनेमासे देशकी जनताका जो व्यापक घोर नैतिक पतन हो रहा है, वह बड़ा ही भयानक है । इस ओर देशके सभी शुभचिन्तकोंको, विशेषकर धर्मप्रेमी बन्धुओंको ध्यान देना आवश्यक है ।

धर्मके विभिन्न अङ्गों—कर्मकाण्ड, अध्यात्म, तत्त्वचिन्तन, सदाचार और राष्ट्रीयतामें जब परस्पर विरोध उत्पन्न हो जाता है, तब धर्मका भयानक रूपसे पतन होने लगता है । गीताने इन सभीके परस्पर विरोधको मिटानेका सफल प्रयत्न किया है । उपनिषदों और तुलसीके मानसकी चेष्टा अध्यात्म और कर्मकाण्डके विरोधको दूर करनेकी रही है । भगवान् महावीर और गौतम बुद्धने कर्मकाण्ड और सदाचारके विरोधको दूर करके आर्य जातिको नवजीवन प्रदान किया था । समर्थ स्वामी रामदास और लोकमान्य पं० बाल गङ्गाधर तिलकने धर्म-को राष्ट्रीय जीवनका प्रेरक बनाया; परंतु जिन लोगोंके हाथमें आज हमारा राजनीतिक नेतृत्व है, वे हमारे धर्मको—विशेषतया वर्ण-व्यवस्थाकी राष्ट्रीयताका विरोधी बतलाते हैं । अब यह धर्माचार्योंका कर्तव्य है कि वे इस भ्रमको दूर करनेका विशेष प्रयत्न करें ।

चितचोर

नंद के लाल हर्‌यौ मन मोर ।
हौं अपनी मोतिन लर पोवति, काँकर डारि गयौ सखि भोर ॥
बंक बिलोकनि, चाल छबीली, रसिक सिरोमनि नंदकिसोर ।
कहि, कैसैं मन रहत श्रवन सुनि सरस मधुर मुरली की घोर ॥
इंदु गोबिंद बदन के कारन चितवन कौं भए नैन चकोर ।
(जैश्री) हित हरिबंस रसिक रस जुवती तू लै मिलि सखि ! प्रान अँकोर ॥

—श्रीहितहरिवंश महाप्रभु

महाराज पृथु

[सस्ती-महँगीका कारण—एक विश्लेषण]

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

प्रायः इधर दो वर्षके भीतर ही वस्तुओंका मूल्य पुनः दूना ऊँचा उठ गया। 'Modern Review-'LXVIII. 10 (October 1943) में भी देवज्योति वर्मनके लेखमें, 'सिद्धान्त' ४।२४; ७।२; ९।१५ के लेखोंमें तथा Journal of the Asiatic Society of Bengal, 1935, Vol. I, Letter No. 2, Page 235 इत्यादिमें मूल्योंके ऐतिहासिक आँकड़े दिये हैं। 'कल्याण' ३८।१२ के मेरे 'दुर्भिक्ष' शीर्षक लेखमें भी कुछ आँकड़े हैं। श्री० आर० सी० मजूमदार, श्री एच-सी० रायचौधुरी आदिकी Advanced History of India, श्रीईश्वरीप्रसादके 'मध्ययुगीन इतिहास', श्रीराम त्यागीकी 'भारतीय इतिहासकी रूपरेखा', रामचरणजीकी 'भारतकी युगयात्रा' (१-२) आदिमें ये आँकड़े विस्तारसे दिये हैं। तदनुसार अलाउद्दीन खिलजीके राज्यकालमें पैसेको जीतल तथा रुपयेको 'तनका' कहा जाता था।* सभी ऐतिहासिकोंने उस समयकी मूल्यतालिका निम्नलिखित प्रकारसे लिखी है—

गेहूँ—७॥	जीतल	अर्थात् प्रायः	२	आनेका	१ मन
जौ— ४	,,	,,	१	,,	१ ,,
धान— ४	,,	,,	१	,,	१ ,,
दाल— ५	,,	,,	१।	,,	१ ,,
चीनी—१½	,,	,,			१ सेर
घी— १	,,	,,			२½ ,,
नमक—५	,,	,,			२½ मन

अकबरके राज्यकालतक प्रायः अन्नोंका यही भाव प्राप्त होता है। 'आईने-अकबरी' तथा 'शमसि-सिराज' अफीफके लेखोंसे मालूम होता है कि उस समय लोगोंकी आय बहुत ही अधिक थी*। १८ हजार रुपयेतक वेतन पानेवाले बहुत-से लोग थे। बौद्धजातकों, कौटल्यके अर्थशास्त्र, गरुड़पुराणके रत्नपरीक्षा-प्रकरण, भविष्यपुराणके अन्न-धातु-परिवर्तन-प्रकरण, मानसोल्लास, युक्तिकल्पतरुके रत्नविवरणादि प्रकरणोंके देखनेसे पता चलता है कि इसके पूर्व गुप्त राजाओंके शासनकालमें अन्न इससे भी सस्ता था। चाणक्यने मूल्यनियन्त्रणपर बहुत अधिक जोर दिया है। † पुराण-महाभारतादिके अनुसार युधिष्ठिरादिके समय मूल्य थोड़ा और सस्ता था। तथापि युधिष्ठिरसे अकबरतकके ऐतिहासिक सर्वेक्षणसे सिद्ध है कि मूल्योंमें विशेष अन्तर नहीं पड़ा है। यह अन्तर अत्यन्त साधारण ही है। बीचमें अकाल भी पड़े हैं, पर पुनः मूल्य

---

* Thomas: 'Chronicles of the Pathan kings', p. 160, Elliot, Vol. III, p. 192. A Jital (copper coin) was ½ (in weight) of a silver *tankā* of 175 grain, and corresponded in value to 1¼ farthing. One Delhi *man* was equal to 28.8 lbs avoirdupois and 40 seers made a *man* (मन). [Thomas, Chronicles, pp. 160—62]

* (A) Making deductions for the monthly expenses of maintaining troops and other incidental expenses, Moreland calculates that a mansabdar of 5000 received a net monthly salary of at least Rs. 18000; one of 1000, at least Rs. 5000 and a commander of 500 at least 1000 a month. (Moreland, 'India at the death of Akbar', pp. 66)

(B) Whether paid in cash or in Jagirs, the Mughal public servants enjoyed, as we know from the Aini-Akbari, inordinately high salaries which attracted most enterprising adventurers from Western and Central Asia. (Kalikinker Dutta)

(C) The Sultan (Allauddin) fixed the pay of a soldier at 234 Tankas and 78 Tankas for a man maintaining two horses. (Advanced History of India)

† इसी प्रकार एक बार दुर्भिक्षके समय जब 'शहना-ए-मंडी' ने सुलतान अलाउद्दीनसे प्रार्थना की कि अनाजका भाव ½ या एक जीतल बढ़ा दिया जाय तो उसे २१ बेंतोंकी सजा दे दी गयी। (ईश्वरीप्रसाद, मध्ययुगका इतिहास, पृ० २४५, पंक्ति १०—१३, प्रयाग १९५५ का संस्करण)

उसी स्तरपर आ गये हैं* । अभी कुछ दिन पहलेतक हिसाव (शुमंकरी) कौड़ी, चौड़ी, रौड़ी आदिमें बताये जाते थे । वराटिका, कपिकणी या कौड़ी प्राचीन मुद्रा पर्याप्त मूल्यकी थी। इससे भी अन्न प्राप्त होता था । सन् १८०१ तक बंगालके सिलहट जिलेकी ढाई लाखकी मालगुजारी कौड़ियोंमें ही सरकारी खजानेमें जमा होती रही । (Fort Williams Reveune Consultation, The Economic. History of Bengal etc., पृथिवीपुत्र, पृ० ३७२ इत्यादि) ।

ध्यान देनेपर पाप, अधार्मिकता, नास्तिकता ही महर्घता—महँगी या मूल्यवृद्धिका मुख्य हेतु दीखती है । हिंदू-कालमें सस्ता अन्न खरीदकर महँगा बेचना भारी पाप समझा जाता था और मुस्लिमकालमें भी इसके लिये कठोर दण्ड दिया जाता था ।† (ईश्वरीप्रसादः मध्ययुग-इतिहास—पृ० २४२, पंक्ति—१२, pool's Medivel India) ।

अंग्रेजोंके आगमनकालसे मूल्य-नियन्त्रणपर ढील पड़ी, संस्कृति-आचार सर्वथा परिवर्तित हुए, धर्मपर आक्षेप हुआ, मशीनोंका विकास-विस्तार प्रारम्भ हुआ । फैशनपरस्ती आरम्भ हुई, अनेक मनबहलाव तथा समय-नाशक नाटक, सिनेमा, खेलोंका प्रसार हुआ । अनिवार्य शिक्षाद्वारा भी कृषिकी भारी उपेक्षा हुई । स्वार्थपरता बढ़ी, दान-परोपकार-वृत्तिका लोप हुआ, वर्णधर्मनियन्त्रण न रहा, जो प्राचीन राजनीतिका मूल मन्त्र था।* विधवाविवाह, गन्धर्वविवाहादि बढ़े, जन-संख्या बढ़ी । परिणामतः सब प्रकारसे सभीके भूखों मरनेकी स्थिति सामने आयी । राजा वेनके भी राज्यमें यही सब हुआ था—

न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः ।
अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः ॥
मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति ।
स महीमखिलां भुञ्जन्………… ।
वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः ॥
(मनुस्मृति ९ । ६५—६७)

उसने इसी प्रकारकी विधवा-असवर्णा-गन्धर्वादि विवाहोंकी परम्परा चलायी । वह नास्तिक भी था । उसने ईश्वरोपासना, वर्ण-धर्म, सत्सङ्ग, स्वाध्याय, इतिहास-पुराण-कथा-वार्तादि सबको रोककर यथेच्छाचार फैशनपरस्तीका विस्तार कर दिया था—

न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित् ।
इति न्यवारयद्धर्मं भेरीघोषेण सर्वशः ॥
(श्रीमद्भागवत ४ । १४ । ६)

लोक बेद तें बिमुख भा अधम न बेन समान ।
(रामचरितमानस २ । २२८ गीताप्रेस)
(रामचरितमानस २ । २२७ काशिराज)

अतः उसके राज्यमें भी अन्नकी भीषण महँगी होकर पीछे सर्वथा अन्न-लोप-सा ही हो गया था ।

प्रजा निरन्ने क्षितिपृष्ठ एत्य
क्षुत्क्षामदेहाः पतिमभ्यवोचन् ॥
वयं राजञ्जाठरेणाभितप्ताः ।
(श्रीमद्भा० ४ । १७ । ९-१०)

---

* The prices were abnormally high in times of famine, but very low in times of over-productions (Smith's Oxford History of India; J. A. S. B. 1935, Vol I.)

† समर्घं धान्यमादाय महार्घं यः प्रयच्छति ।
स वै वार्धुषिको नाम सर्वधर्मेषु गर्हितः ॥
वृद्धिं च भ्रूणहत्यां च तुलया समतोलयत् ।
अतिष्ठद् भ्रूणहा कोट्यां वार्धुषिः समकम्पत ॥

(विष्णुस्मृति ५१ । ९, आपस्तम्बधर्मसूत्र १ । १८ । २२, वसिष्ठधर्मसूत्र २ । ४१ । ४५—५५, बौधायन १ । ५ । ९३—९५, मनु० ३ । १५३, १८०; याज्ञवल्क्य० १ । ६ । १३२, १६१; अत्रिधर्मसूत्र ४ । ४०; गौतमधर्मसूत्र १ । ७५; अङ्गिरः० १२९; यम० ३५, ३७; बृहद्यम० ३१६; वृद्धपाराशर १ । २८२; कात्यायन ६ । ७; लघु शातातप १५३; प्रजापतिस्मृति ८८, ९०; शङ्ख १७ । ३८)

* वर्णानाश्रमांश्च न्यायतोऽभिरक्षेत् ।
चलतश्चैतान् स्वधर्मे स्थापयेत् ॥
(गौतमधर्म० २ । २ । ९-१०)

रघुवंश १४ । ६७; राजनीतिरत्नाकर, नीतिवाक्या०, श्रीमद्भागवत १ । १७ । १६; मार्कण्डेयपुराण २७ । ३१ ।

यश्चोल्लङ्घ्य स्वकं धर्मं स्ववर्णाश्रमसंश्रितम् ।
नरोऽन्यथा प्रवर्तेत स दण्ड्यो भूभृतो भवेत् ॥
(मार्कं० २८ । ३४)

अराजके नृपश्रेष्ठ धरित्र्याः सकलौषधीः ।
ग्रस्तास्ततः क्षयं यान्ति प्रजाः सर्वाः प्रजेश्वर ॥

× × ×

देहि नः क्षुत्परीतानां प्रजानां जीवनौषधीः ।

(विष्णुपुराण १ । १३ । ६७-६८)

इत्यादि ।

आदिराज पृथुका प्राकट्य

अत्यन्त अधार्मिक, अविनीत होनेके कारण वेन ब्राह्मणों-द्वारा शापदग्ध हुआ—'वेनो विनष्टोऽविनयात्' (मनु, भागवतादि) और तपस्वी महर्षियोंने उसके शरीरको मथकर पृथुको प्रकट किया। वेनका राज्य प्रायः लोकतन्त्र ही था, अतः पृथुको 'आदिराज' की संज्ञा मिली।* 'राजा' शब्द पहले उनमें ही इसलिये प्रयुक्त तथा सार्थक हुआ कि प्रजा उनके ही द्वारा पूर्णरीत्या अनुरञ्जित हुई थी।† उन्होंने गोपालन तथा कृषिपर पूरा ध्यान दिया, इसीसे भूमिका नाम उनके नाम-पर 'पृथ्वी' एवं 'पृथिवी' आदि पड़ा। प्रजा इतनी प्रसन्न हुई कि उन्हें प्रातःस्मरणीय बना लिया।‡ अब भी मान्यता है कि उनके प्रातःस्मरणसे अन्न-धनकी प्राप्ति होती है। उनके सामने पृथ्वी गोरूपमें उपस्थित हुई थी और उन्होंने प्रह्लाद, बृहस्पति, हिमाचल आदिको वत्स बनाकर विद्या, कला, ओषधि आदिका दोहन किया था—

पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम् ।

(कुमारसम्भव १ । २; अथर्व ८ । २८)

महाराज पृथुकी सिद्धिमें आस्तिकता, भगवद्भक्ति, ब्राह्मणभक्ति एवं धर्मप्रेम ही मूल हेतु था।* भगवान्‌के चरित्रके वे इतने अधिक प्रेमी थे कि उन्होंने भगवद्गुण-श्रवणके लिये दस हजार कान माँगे थे—

'महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः।

(श्रीमद्भा० ४ । २० । २४)

पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना ।''''सुनहिं सहस दस काना ॥

वे सर्वनिरपेक्ष होकर भी प्रजाधारण करनेमें समर्थ थे—

आत्मयोगबलेनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजाः ।

(श्रीमद्भा० ४ । १८ । २७)

उन्होंने पृथ्वीको समतल करके, सब प्रकार कृषिके योग्य बनाया। सर्वत्र ग्राम, नगर, खेट, खर्वट, घोष, पल्ली आदि बसाये। प्रजासे कर लेना प्रायः छोड़ ही दिया था। पृथ्वी बिना जोते-बोये ही धान्योंसे परिपूर्ण रहती थी—

अकृष्टपच्या पृथिवी सिध्यन्त्यन्नानि चिन्तनात् ।

(ब्रह्मपुराण ४ । ५९; पद्मपुराण २ । २८ । ४०; विष्णुपुराण १ । १३ । ५०; वायु० ६२ । १४२; ब्रह्माण्ड० ३६ । १४२; हरिवंश ४ । ४२ इत्यादि)।

अन्न इच्छामात्रसे पक-बनकर तैयार हो जाते, गौएँ इच्छानुसार दूध, दही, घी एवं अन्य श्रेष्ठ पदार्थ देती थीं, कामधेनुके तुल्य थीं, मधुसे मानो सभी पत्ते-वनस्पतियाँ परिपूर्ण थीं—

सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ।

(ब्रह्मपुरा० ४ । ५९; विष्णुपुरा० १ । १३ । ५० इत्यादि, वही सब पूर्वोक्त स्थल)

पृथ्वीको इस प्रकार उनके वशमें देख कुछने इसे उनकी स्त्री और कुछने पुत्रीकी कल्पना की—

---

* (क) स आदिराजो रचिताञ्जलिर्हरिं विलोकितुं नाशकदश्रुलोचनः ।

(श्रीमद्भा० ४ । २० । २१)

(ख) इत्यादिराजेन नुतः स विश्वदृक् तमाह राजन् मयि भक्तिरस्तु ते ।

(श्रीमद्भा० ४ । २० । ३२)

(शतपथ ब्रा० ५ । ३ । ५ । ४)

† (क) अथामुमाहू राजानं मनोरञ्जनकैः प्रजाः ।

(श्रीमद्भा० ४ । १७ । १५, विष्णुपुराण १ । १३ । ४८)

(ख) रञ्जिताश्च प्रजाः सर्वास्तेन राजेति शब्द्यते ।

(महा० शान्तिपर्व ५९ । १२५)

‡ वैन्यं पृथुं हैहयमर्जुनं च शाकौन्तलेयं भरतं नलं च ।
रामं च सीतां स्मरति प्रभाते तस्यार्थलाभो भवतीह नित्यम् ॥

(नित्यकर्म प्रातः)

* सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥

इत्यादि पृथूक्ति(श्रीमद्भा० ४ । २२ । ४५, ४६; मनुस्मृति १२ । १००; मनु० १ । १०१; भविष्यपुराण २ । १२३)

(१) पृथोरपीमां पृथिवीं भार्यां पूर्वविदो विदुः ।

(मनुस्मृति ९ । ४४)

(२) दुहितृत्वमनुप्राप्ता देवी पृथ्वीति चोच्यते ॥

(ब्रह्मपुराण ४ । ११३)

(३) दुहितृत्वे चकारेमां प्रेम्णा दुहितृवत्सलः ।

(श्रीमद्भा० ४ । १८ । २२, वायु० ६३ । ३)

वर्द्धमानने गौरादिगणमें पृथुका अन्तर्भाव करके 'पृथ्वी', शेष पाणिनि आदिने पृथिवी ही माना है ।

पृथोरियं पृथ्वी (अण्), पृथुरियं षिद्गौरादित्वात् ङीष्,

(पा० ४ । ४१)

प्रथेः षिवन् (उणा० १ । १५७)

प्रथिम्रदि—उ (उणा० १ । २८)

तत्पुष्करपर्णेऽप्रथयत्

(यजु० ११ । १९, १३ । २ शतपथ)

पृथुना राज्ञावतारिता इति वा पृथ्वीति क्षीरस्वामी ।

'स्तेगो न क्षामत्येति पृथ्वीम्'

(ऋग्वेद १० । ३१ । ९)

पृथ्वीयं पृथुकन्यात्वात् ।

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, प्रकृतिख० ९ । ३३; देवीभागवत ९ । १० । ३०)

पृथ्वीयं पृथुकन्यात्वाद् विस्तृतत्वात् महामुने ।

(मही मुने इति अपि देवी भा० पाठः)

—इत्यादि पृथ्वीकी अनेक व्याख्याएँ शास्त्रोंमें प्राप्त हैं और पृथ्वी, पृथिवी एवं पृथवी—ये तीन रूप भी बनते हैं—(शब्दार्णव) कहीं-कहीं 'पृथुवी' रूप भी है ।

(द्विरूपकोश)

इन्होंने अत्रि आदि मुनियोंको अपार धन प्रदान किया था (महाभारत, वनपर्व, १८५ । ८—३५) । इनकी भक्तिसे प्रसन्न होकर साक्षात् भगवान् विष्णुने ही इनके शरीरमें प्रवेश किया था—

तपसा भगवान् विष्णुराविवेश च भूमिपम् ।

(महा० शा० ५९ । १२८)

प्रायः भगवान् राम एवं ध्रुव, प्रह्लाद, युधिष्ठिर, मान्धाता, अम्बरीष, रुक्माङ्गद, सहस्रार्जुन (कार्तवीर्य), विक्रमादित्य आदि राजाओंके शासनकालमें भी ऐसी ही स्थिति रही—

बस्तु बिनु गथ पाइए (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड)

यत्प्राप्यते वस्तु विनार्घतोऽपि ।

(सत्योपा० पुलस्त्यसं०) इत्यादि ।

ससि संपन्न सदा रह धरनी ।

—आदिसे इन लोगोंके समयमें निर्मूल्य वस्तु मिलनेकी बात मिलती है । वस्तुतः सच्ची बात यह है कि ये राजा लोग अत्यन्त त्यागी, भोगविमुख एवं प्रजाहितको जाननेवाले महान् भगवद्भक्त थे ।

राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः ।

(भोजप्रबन्ध १ । ४४; योगवासिष्ठ पृ० ३१७, ६१८, निर्णय-सागर संस्करण; अद्भुतदर्पण नाटक पृ० १२७, १३२; प्रबन्ध-चिन्तामणि ५ । ५२)

अतः प्रजा भी तद्वत् ही भोगविमुख थी । ऐसी स्थितिमें सर्वत्र दान-परोपकारकी भावना प्रसरित होनेपर ऐसी स्थिति आनी कोई कठिन बात नहीं है । पर भोगलोलुपताकी ओर नेताके अभिमुख होनेपर प्रजा भी जब वैसी ही हो जाती है, तब महार्घताको कोई कैसे रोक सकता है । उस समय दान-उपकारकी भावना लुप्त होकर अर्थ-संग्रहेच्छा, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, परपीडन, छल, असत्य आदि दोष सर्वत्र वृद्धिंगत होते हैं । अतः आस्तिकता एवं सच्चे हृदयसे त्यागकी भावना ही अभीष्ट है । इसके बिना सद्भावना नहीं आ सकती और सद्भावनाके बिना समर्घता-शान्ति-सुखका दर्शन होना बहुत ही कठिन होगा । इन सब वस्तुओंके लिये भी सत्सङ्ग-स्वाध्याय-सदाचारकी आवश्यकता है । उसके लिये सच्ची सद्विद्या—संस्कृतभाषाके प्रचार-शिक्षणकी आवश्यकता होगी । इस शिक्षामें भी पूर्ववत् त्याग-वृत्तिसे ही शिक्षक-विद्यार्थीका रहना काम करेगा । आजकी भोगमयी शिक्षा विपरीत दिशाको ही ले जायगी । वर्णाश्रम-पालन भी परमावश्यक है । अंधाधुंध शिक्षासे यही स्थिति रहेगी अथवा और अधिक बिगड़ेगी । समय रहते सभीको इन विषयोंपर शीघ्रतासे विचारकर यथोचित परिवर्तनके लिये तत्काल प्रयत्नशील होना चाहिये ।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

महात्माका चमत्कार—एक महापुरुषके दर्शन

आज एक तीस वर्ष पुरानी घटनाकी और एक अद्‌भुत अनुभवकी स्मृतियाँ मनमें जग रही हैं। प्रयागके माघ-मेलेके अवसरपर यात्रियोंके स्नानकी सुविधाके लिये गङ्गाजीके प्रवाहको मोड़नेके लिये मुझे उस समय एक ठेका मिला था। अथक प्रयत्नके बावजूद हताश होते-होते एक महात्माकी कृपासे कैसे मुझे चमत्कारिक सफलता मिली, यही बताने जा रहा हूँ। यों मुझे क्यों और कैसे यह ठेका मिला, वह भी एक जान लेने लायक बात है।

१९३६-३७ में मैंने सरकारी अधिकारियोंके कहने, बल्कि दबाव देनेसे माघ-मेलेमें बिजली लगानेका ठेका अपनी कम्पनीके नामसे लिया और उसमें जी-तोड़ परिश्रम किया। ठीक समयपर बिजलीकी बत्तियाँ मेलेमें जल गयीं, जिसकी किसीको आशा नहीं थी। मुझे १६ दिसम्बरको सरकारी आदेश मिला था कि जनवरी ७ को बिजली-की बत्तियाँ मेलेभरमें लग जानी हैं। यानी केवल १९ दिनका समय मिला था और न एक गज ताँबेका तार और न एक भी खंभा मेरे पास था। यह सब सामान मैं कलकत्ता जाकर पैसेंजर गाड़ीसे लाया और तब यह काम कराया। केवल सरकारी अफसरोंको ही नहीं, बल्कि और जो इस कामकी जानकारी रखते थे, उनको भी बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस थोड़े-से समयमें यह काम कैसे हो गया। मैं स्वयं ६ रातोंतक नहीं सोया और न अपने घर आया। बाँधपर ही एक छोटे-से तम्बूमें कुर्सीपर बैठे-बैठे कभी-कभी एक-आध घंटेके लिये सो लेता था और मेरे आदमी आठ-आठ घंटेकी शिफ्टमें काम कर रहे थे। मेरे इन्जीनियर श्री बी० पी० वर्माने एक ही शिफ्टमें १८-२० घंटेतक काम किया। इस काममें इतनी शीघ्रता करनेके कारण मुझे पर्याप्त हानि हुई, जो कोई सात या आठ हजार रुपयेकी थी। परंतु मैंने पैसा कमानेकी जगह इस बातको अधिक महत्त्व दिया कि मेरा वचन रह जाय और डिपार्टमेंटकी बदनामी न हो। इसका सरकारी अफसरोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा और इसी कारण तत्कालीन एग्जेक्यूटिव इंजीनियर श्री एस० जी० नरवाणेने बुलाकर जनवरीके पहले सप्ताहमें मुझसे कहा कि क्योंकि गङ्गा झूँसीकी तरफ जा रही हैं और १० लाख तीर्थ-यात्रियोंको थोड़े-थोड़े पानी और कीचड़मेंसे जाकर संगमका स्नान अमावस्याके दिन करना पड़ेगा, इसलिये सरकारने यह निश्चय किया है कि गङ्गाजीकी धारको ऐसा मोड़ा जाय कि वह झूँसीकी तरफ न जाकर बाँधकी तरफ आ जाय और इस कामका ठेका मैं तुमको देना चाहता हूँ और वह केवल इसलिये कि तुमने बिजलीके काममें जो हमलोगोंके कारण हानि उठायी, उसकी कुछ पूर्ति हो जाय। मैंने उनसे साफ-साफ कहा कि मैंने ऐसा काम कभी नहीं किया है तो उन्होंने कहा कि हमारे असिस्टेंट इंजीनियर श्रीमुसद्दीलाल आपको सब काम बतायेंगे। आप केवल सब सामान और मजदूरोंका प्रबन्ध कर दें। उनके इस विश्वास दिलानेपर मैं गङ्गाजीकी धाराको इस ओर मोड़नेके कामके लिये राजी हो गया।

इस कामके लिये बल्लियाँ पानीमें गाड़कर और उनके पीछे बालू भरकर बाँध बाँधा जाता है। सैकड़ों बोरियाँ निर्धारित स्थानपर बल्लियोंके पीछे निश्चित स्थानपर डाली जाती थीं। इन सबका अभिप्राय यह था कि गङ्गाकी लहर बाँधकी तरफ हो जाय। इस काममें मैंने सौ-सवा-सौ आदमी लगाये थे और कई नावें किरायेपर ले रक्खी थीं। जैसा मैंने बताया हमारे आदमी बालू भर-भरकर बल्लियोंके पीछे बोरियाँ डालते थे। पाँच दिनतक सायंकालको यह मालूम होता था कि हमलोग अपने कार्यमें सफल हो रहे हैं और अगले दिन काम करनेसे पूरी सफलता मिल जायगी। परंतु न जाने कौन-सी दैवी शक्ति थी, जो हमारे प्रयत्नोंको व्यर्थ और नष्ट कर देती थी। तीन दिनतक प्रातःकाल मेरे आदमी मुझे यह आकर बताते थे कि साहब! रात्रिमें १२ बजेके करीब एकदम कुछ ऐसी लहर आयी कि सब बल्लियाँ और बोरियाँ बह गयीं। इस तरहसे जब तीन दिन बीते तो चौथे और पाँचवें दिन रात्रिमें भी मैं उस कड़कड़ाते जाड़ेमें नावपर ही रहा और वही हुआ, जो मुझे बताया गया था। अर्थात् रात्रिमें १२ बजेके आस-पास कोई ऐसा गङ्गाजीका बहाव होता था कि मेरा दिनभरका कार्य असफल हो जाता था और बल्लियाँ तथा बोरियाँ बह जाती थीं। आप समझ सकते हैं कि इसके कारण मुझे कितनी मानसिक वेदना हो रही थी। सरकारी अफसर भी

काफी परीशान थे। कहनेवालोंको मौका मिल गया था कि बिजलीके ठेकेदारको गङ्गाकी धारको बाँधनेका जो ठेका दिया गया, यह कुछ गड़बड़ बात है। इसका मुझे और भी अधिक दुःख था; क्योंकि मेरे साथ भलाई करनेवालोंकी जनतामें बुराई की जा रही थी।

अमावससे दो दिन पहलेकी बात है कि प्रातःकाल लगभग नौ बजे मैं और श्रीमुसद्दीलाल, असिस्टेंट इंजीनियर (जो एल० एस० जी० ई० डी० के चीफ इंजीनियर होकर रिटायर हो गये हैं) और श्री भगवान-चन्द्र तत्कालीन मैनेजर, माघ-मेला (जो कलेक्टर होकर रिटायर हो गये हैं) मेरे साथ एक नावमें बैठकर श्री-मुसद्दीलालजीके आदेशानुसार दारागंजवाले गङ्गाके पुलकी ओर गङ्गाजीके किनारे-किनारे जा रहे थे; क्योंकि इंजीनियर साहबका यह विचार था कि एक और जगह प्रयत्न किया जाय तो सम्भवतः हमलोग गङ्गाजीका प्रवाह मोड़ सकें। देखते हैं कि गङ्गाजीके किनारेपर धोतीकी जगह सफेद कपड़ा लपेटे हुए, खड़ाऊँ पहने एक तेजस्वी पुरुष, जिनकी लम्बाई ५½ फुटके करीब होगी, हाथमें कमण्डलु लिये हुए हमारी नावकी ओर आये और हाथसे संकेत करके उन्होंने नावको ठहरनेके लिये कहा। नाव खड़ी हो गयी। उन्होंने पूछा 'आपमेंसे शर्माजी कौन हैं ?' तब मैंने हाथ जोड़कर कहा कि 'महाराज ! मुझे ही शर्मा कहते हैं।' वे हँसे और कहने लगे—'तुमने पिछले एक सप्ताहसे गङ्गाजीकी बड़ी सेवा की और इसका तुमको फल अवश्य मिलेगा।' मैंने कहा कि 'महाराज ! मेरा सब परिश्रम असफल हो गया है; क्योंकि जिस कार्यके लिये मैंने आठ-आठ घंटे पानीमें खड़े होकर अपने आदमियोंसे काम कराया, वह सब आधी रातमें बह जाता है; तब अब सफलताकी क्या आशा है।' महात्माने कहा—'मैं जो कहूँ, तुम वह करो तो तुमको अवश्यमेव सफलता मिलेगी।'

मेरा हाल उस समय उस डूबते हुए आदमी-जैसा था, जो तिनकेका सहारा ढूँढ़ता है और इसी कारण मैंने हाथ जोड़कर उनसे फिर कहा कि 'महाराज ! आप ही बता दीजिये कि कैसे इस काममें सफलता मिल सकती है।' महात्माजीने आदेश दिया—'कल प्रातःकाल १० बजे आप उस निश्चित स्थानपर जिसे मैं बताऊँ, गङ्गाजीका पूजन करना।' और उन्होंने दारागंजके एक पण्डितजीका नाम भी बताया और कहा कि 'उनको बुलाकर पूजा कराइये। दूसरे, मैं आगे चलकर आपको स्थान दिखलाता हूँ, जहाँ यदि आप एक ७ या ८ फुट चौड़ी और ३ फुट गहरी तथा कोई १०० फुट लंबी नाली खुदवा दें तो गङ्गाजीका प्रवाह उधर ही आ जायगा और तब काम हो जायगा। आप निश्चय जानिये कि गङ्गा माताके १२ लाखसे ऊपर यात्री, जो परसों संगममें स्नान करने आयेंगे, उन सब यात्रियोंको वे आनन्दपूर्वक स्नान करायेंगी।'

जहाँ हमलोगोंकी बातें हो रही थीं, उससे एक ५० फुट चलनेके बाद महात्माने वह जगह दिखायी, जहाँ गङ्गाजीका पूजन करनेको बताया था। उससे १०० फुट आगे चलकर वह जगह बतायी जहाँ ७ या ८ फुट चौड़ी नाली खुदवानी थी। यह वह जगह थी, जो गङ्गाजीके बहावमें ऊँची जगहपर थी। मैंने कहा कि 'महाराजजी ! ऊँची जगहपर पानी कभी चढ़ता नहीं, नीची जगहमें ही बहता है।' महात्माने कहा कि 'आप विश्वास कीजिये। गङ्गाजी इसी रास्तेसे बाँधकी ओर आयेंगी।' मुझे क्योंकि अपने मनमें विश्वास नहीं हुआ अतः मैंने कहा, 'महाराज ! अंधेको रास्ता दिखानेके लिये स्वयं ही उसके घर पहुँचाना पड़ता है। इस कारण यदि आप इस नालीको खुदवा दें तो मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँगा; क्योंकि मैं इंजीनियर साहबके आदेशानुसार कल दो सौके करीब आदमी इसी कामके लिये दूसरी जगह लगा रहा हूँ।' महात्माजी हँसे और उन्होंने कहा कि 'अच्छी बात है, हम आपका यह काम भी कर देंगे। आप हमको ४० रुपये दे दीजिये और हमको ४० फावड़े, दो सौ टोकरियाँ दिलवा दीजिये।' मैंने तुरंत अपनी जेबमेंसे ४०) प्रस्तुत किया और अपने मैनेजरके नाम एक आज्ञा-पत्र दिया कि महात्माजीको जितने फावड़े और टोकरियोंकी आवश्यकता हो दे दी जायँ।

जब हमलोग चलने लगे, तब महात्माजीने कहा कि 'तुमने गङ्गाजीके पूजनकी सामग्री तो लिखी ही नहीं, वह भी लिख लो और निर्धारित समयपर और उन्हीं पण्डितजीसे पूजा कराना।' उनके आदेशानुसार मैंने सब सामग्री लिख ली। मैं उसमेंसे केवल एक चीज आपको बता देना चाहता हूँ कि उन्होंने सवा मन दूध लिखाया था और इसीके अंदाजेसे और बाकीकी सामग्री थी। सब मिलाकर उस जमानेमें, जब कि चीजें सस्ती थीं, १३०) की सामग्रीका सामान आया।

मैं इस सिलसिलेमें दो बातें बता देना आवश्यक समझता हूँ। सबसे पहली बात तो यह है कि मेरे पिताजी बड़े कट्टर आर्यसमाजी थे और वे उस समय जीवित थे तथा मैं स्वयं भी सदैव आर्यसमाजके नियमोंमें विश्वास करता आया हूँ। मेरे गुरु स्वामी परमानन्दजीके आदेशानुसार उस वर्ष यहाँपर आर्यसमाजने मुझे प्रधान भी चुन रखा था। यह सब होनेपर भी मेरा गङ्गाजीके पूजनको राजी हो जाना मेरे कुटुम्ब और मित्रोंके लिये एक आश्चर्यकी बात थी और मेरे पिताजी तो बहुत ही क्रोधित हुए। पर न जाने क्यों मैंने यह सोचा कि ऐसा करनेमें कोई बुराई नहीं है।

दूसरे, जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, जहाँपर कि महात्माजीने नाली खुदवानेको कहा था, वह गङ्गाजीके बहावसे ढाई-तीन फुट ऊपर जगह थी और इस कारण मेरा यह विश्वास कर लेना कि पानी ऊपरको बढ़ जायेगा, श्रीमुसद्दीलाल और उनके सहयोगी चन्द्रासाहबको आश्चर्यमय प्रतीत हुआ। उन्होंने कहा—'शर्माजी आज मालूम होता है कि आपका मस्तिष्क ठिकाने नहीं है। आपने बेजाने तथा बिना पूछे ही एक आदमीको ४०) दे दिये और अपने मैनेजरके नाम उसको इतना सामान देनेको लिख दिया और ऊपरसे आप गङ्गाजीकी पूजा करने जा रहे हैं। खैर आप जो करना चाहें, करें।'

इसके बाद नाव आगे बढ़ी और श्रीमुसद्दीलालजीने एक स्थान दिखलाया और कहा कि उसी समयसे वहाँ काम लगा देना चाहिये। ऐसा ही किया गया; क्योंकि उनको यह विश्वास था कि यहाँ उन्हीं बोरियों और बल्लियोंका बाँध बाँधनेसे गङ्गाजीका बहाव बदल सकता था।

२० वर्षसे अधिकसे दारागंजसे झूँसीतक पीपोंका एक पॉन्टून पुल बनता था और उसको बनानेवाले एक घाट-दरोगा थे। उस समय वे वृद्ध हो गये थे और रेशमी साफा पहना करते थे, वे भी मौजूद थे। वे पानीको बाँधनेमें बहुत अनुभवी समझे जाते थे। उन्होंने भी इंजीनियर साहबकी बातका समर्थन किया। हमलोग लौट आये। सायंकालको किसी समय वे महात्मा फावड़े और टोकरियाँ तथा कुछ कुदाल इत्यादि मेरे कैम्पसे ले गये।

सायंकालको मैं अपने पिताजीको मेलेमें लाया और क्योंकि वे नहरके इंजीनियर रह चुके थे, उनको वह जगह दिखलायी, जहाँ महात्माने नाली बनानेको कहा था। वे हँसे और कहने लगे कि 'तुम्हारा दिमाग ठीक नहीं है। पानी ऊपर नहीं चढ़ा करता।'

तत्कालीन एग्जेक्यूटिव इंजीनियर श्रीनरवाणेने भी, जिनका मैंने ऊपर उल्लेख किया है, उस स्थानको देखकर वही बात कही।

उधर दिनभर नयी जगहपर काम करनेके बाद अगले दिन मुझे यही समाचार मिला कि दिनमें जितने काम किये थे, रात्रिमें १२ बजेके करीब सब बह गये। आप समझ सकते हैं कि मैं कितना हताश हुआ हूँगा। अगले दिन फिर उसी जगह सवा सौसे अधिक आदमी कामपर लगाये गये; क्योंकि ऐसा ही इंजीनियरसाहबका आदेश था।

इधर निर्धारित समयपर पूजाकी सामग्री और पण्डितजी बताये हुए स्थानपर पहुँच गये और मैं भी वहीं था। हमलोग पूजन आरम्भ करनेवाले थे कि श्रीमुसद्दीलाल इंजीनियर तथा श्रीभगवानचन्द्र मैनेजर भी आ गये और उन्होंने कहा—'शर्माजी! हमलोग भी गङ्गाजीके पूजनमें सम्मिलित होना चाहते हैं।' मैंने उनका स्वागत किया और कहा कि मैं अपनेको धन्य समझूँगा यदि वे भी मेरी पूजामें सम्मिलित होंगे। पूजा आरम्भ हुई और अनुमानतः १२ बजेके करीब समाप्त हुई। इस स्थानसे हमलोग अच्छी तरह देख रहे थे कि वह महात्मा भी अपनी बतायी हुई जगहपर नाली खुदवा रहे हैं और स्वयं भी पूजा कर रहे हैं।

हमलोगोंका ध्यान अपनी पूजामें लगा हुआ था और पूजाकी अन्तिम आहुति देनेके पश्चात् हमलोग आँख बंद करके पण्डितजीके कथनानुसार कुछ मन्त्रोंको उच्चारण कर रहे थे। उसके बाद हमलोगोंने आँख खोलीं घाट-दरोगा, जिनका मैंने ऊपर उल्लेख किया है, वहाँ मौजूद थे। उन्होंने अपनी पगड़ी उतारकर गङ्गाजीमें डाल दी और कहा कि 'गङ्गा माई! मेरा मान भी अब तुम्हारे ही हाथमें है।' पगड़ी डालते ही दरोगाजी तुरंत चिल्ला पड़े—'शर्माजी, गङ्गाजी तो आ गयीं। देखिये मेरी पगड़ी किधर बह रही है।' हम सबको देखकर महान् आश्चर्य हुआ; क्योंकि पगड़ी बाँधकी तरफ ही बह रही थी और ऐसा मालूम होता था कि गङ्गाजीमें बाढ़ आ रही है। हमलोग वहाँसे तुरंत उन महात्माको धन्यवाद देनेके लिये उनकी तरफ गये; परंतु जब वहाँ पहुँचे, तब कुलियोंने बताया

कि थोड़ी ही देर हुई यहाँ थे, कहाँ गये होंगे। परंतु पानी उस नालीमेंसे बहुत जोरोंसे आ रहा था। इसको देखकर और भी आश्चर्य हो रहा था।

तीन घंटेके बाद यह हालत हो गयी कि गङ्गाके किनारे जो पंडा लोग अपने तख्त लगाये रहते हैं, उनको तख्त उठाना मुश्किल हो गया; क्योंकि पानी बाँधकी तरफ बहुत जोरोंसे आ रहा था।

मैंने, श्रीमुसद्दीलालजी तथा श्रीभगवानचन्द्रजीने उन महात्माको ढूँढ़नेकी बहुत कोशिश की, मगर हमलोगोंको वे आजतक नहीं मिले। कुलियोंसे पूछनेपर पता लगा कि उन्होंने ४० कुली रक्खे थे और हर एकको पहलेसे ही प्रातः एक-एक रुपया दे दिया था (उस जमानेमें कुली ६ आना रोजपर मिलता था) और कह दिया था कि यह सब समान उस कैम्पमें पहुँचा देना। हम सबको आश्चर्य तो हुआ ही, साथमें यह तृष्णा रह गयी कि हम उनको धन्यवाद भी न दे सके।

सायंकालको मेरे पिताजी तथा एग्जेक्यूटिव इंजीनियर साहब तथा और दो-एक इंजीनियर आये और सब देखकर बड़े स्तम्भित हुए। सबने यही कहा कि यह तो एक चमत्कार हो गया। हमलोग इसको किसी तरहसे समझ नहीं सके और सचमुच ही यह चमत्कार था।

उस दिन साढ़े आठ बजे रात्रिके समय एक साधु मेला-कैम्पमें मुझसे मिलने आये; क्योंकि मैं बहुत दिनका थका हुआ था, सो गया था। मगर उन्होंने मेरे आदमीसे कहा कि तुम उनको जगाओ और उनको बाहर बुलाओ, मुझे उनसे एक आवश्यक कार्य है। मेरे आदमीने बहुत कुछ कहा, परंतु अन्तमें उसने मुझे जगा ही दिया और कहा कि एक साधु आपसे मिलने आये हैं। मुझे यह अच्छा नहीं लगा और मैं बाहर निकला तो वे साधु दौड़े और उन्होंने मेरे चरण छूनेका प्रयत्न किया। मैंने उनसे कहा कि 'महाराज! आप यह क्या करते हैं?' तो उन्होंने कहा कि 'आप बड़े भाग्यवान् हैं। मैं तो आपका दर्शन करने और चरण छूने आया था। आप नहीं जानते कि कल और आज आपको श्रीशिवजी महाराजने स्वयं दर्शन दिया और उन्हींकी कृपा और दयासे गङ्गाजीका बहाव बदल गया।' थोड़ी देर बात करनेके बाद वे साधु चले गये।

क्योंकि मैं सदैव आर्यसमाजी रहा हूँ, मुझे यह तो विश्वास नहीं हुआ कि मुझे शिवजीके दर्शन हुए; परंतु यह मैंने अवश्य समझा कि किसी बहुत बड़े महान् पुरुषने, जो कभी बहुत बड़े इंजीनियर रहे होंगे, दर्शन दिये। यह भगवान् ही बता सकते हैं कि क्या सत्य है।

१९५७में मैंने एक अंग्रेजी पुस्तक पढ़ी—'आटोबायोग्रफी ऑव ए योगी,', जिसको स्वामी योगानन्दजीने लिखा है और जो अमेरिकामें छपी है। उसमें एक जगह यह लिखा था कि हिमालयपर एक महात्मा रहते हैं, जिनकी आयु ३५० वर्षसे अधिक है और जो कभी-कभी प्रयागमें माघ-मेलेपर तथा हरद्वारमें आते हैं। उनकी पोशाक सफेद होती है। वे खड़ाऊँ पहनते हैं और हाथमें कमण्डलु रखते हैं। वे कोई साढ़े पाँच फुट लम्बे हैं। बड़े तेजस्वी स्वरूपवाले हैं।

मनमें बात उठती है, 'क्या यही महान् पुरुष थे, जिनके मुझे दर्शन प्राप्त हुए?'

—कप्तान श्री एम्० पी० शर्मा

(२)

रहस्य

आदरणीय वर्माजी अत्यन्त सरलहृदय एवं विनम्र व्यवहारशील अध्यापक हैं। छात्रोंके साथ वे मित्र-जैसा व्यवहार करते हैं। बात-बातमें छात्रोंको 'मेरे दोस्त' और 'आप' कहकर सम्बोधित करते हैं, कभी भी किसी भी छात्रके लिये अपशब्दका प्रयोग नहीं करते। उनकी एक प्रमुख आदत यह है कि वे किसी भी छात्रका उपहास नहीं करते, जैसा कि प्रायः देखा जाता है कि कुछ अध्यापक किसी छात्रको भरी कक्षामें लज्जित करके एक प्रकारके आनन्दका अनुभव किया करते हैं। वे अपने व्यवहारसे छात्रोंको इतना संतुष्ट रखते हैं, जितना कोई भी अध्यापक नहीं रख पाता।

एक बार कक्षामें मैंने, बहुत ही नम्रतापूर्वक, इस सीधेपनका रहस्य पूछा, तो वे मुस्कराकर बोले, 'इसमें भी एक रहस्य है।'

रहस्य बतानेके लिये आग्रह करनेपर जब वे गम्भीर हो गये, तब मैंने उन्हें परेशान करना उचित न समझा और चुपचाप अपने स्थानपर जाकर मैं बैठ गया।

थोड़ी देर चुप रहनेके बाद वे बोले—'यह घटना उस समयकी है, जब मैं 'फर्स्ट-इयर'में पढ़ता था। हमारे सेक्शनमें फिजिक्स पढ़ाते थे—

× × ×

बहुत सख्त आदमी थे। लड़कोंसे डटकर काम लेते थे और काम न करनेपर पूरे पीरियडभर बेंचपर खड़ा रखते थे। यहाँतक तो कोई बात न थी, पर उनमें एक आदत यह थी कि जब भी उनका मन होता वे किसी भी लड़केको खड़ा करके सवाल पूछने लगते और गलत उत्तर बतानेपर भरी क्लासमें उसे बेवकूफ बनाते। सब लड़कोंके सामने उसका मज़ाक उड़ाया जाता और सब हँस-हँसकर इसका आनन्द लेते। बेचारा लड़का हदसे ज्यादा लज्जित हो जाता। जो भी उनके पल्ले पड़ता, बेचारेकी उस समयके लिये तो मिट्टी ही पलीद कर देते।

एक समयकी बात है कि मैं जो बीमार पड़ा तो चार दिनोंतक खाटसे न उठा और चार दिनोंतक भोजन खानेको न मिला। पाँचवें दिन हल्का फुल्का खाया। मैं पूरी तरह स्वस्थ भी नहीं हुआ था, फिर भी कालेज चला ही आया। तीसरा पीरियड फिजिक्सका था।

× × ×

आज काफी देरसे आये और आते ही उन्होंने हाजिरी लेना शुरू कर दिया—हालाँ कि प्रायः वे हाजिरी पढ़ानेके बाद लेते थे। रोल नम्बर ३४ पर आकर उन्होंने कहा—'कीप स्टैन्डिंग' (खड़े हो जाओ) और फिर हाजिरी लेने लगे। लाचार होकर मैं खड़ा हो गया। मन-ही-मन मैं घबराने लगा और सोचने लगा कि आज तो खैर नहीं है।

× × ×

लड़कोंके साथ कभी-कभी हदसे ज्यादा कठोर हो जाते थे। यही उन्होंने उस दिन मेरे साथ किया। रजिस्टर बंद करनेके बाद बड़े ही अजीब लहजेमें उन्होंने मुझसे पूछा—'क्या आप यह फरमानेकी तकलीफ करेंगे कि आपके दीदार एक हफ्ते बाद क्यों नसीब हो रहे हैं? क्या बंदेसे कोई खता हो गयी थी?'

सारी क्लास मेरी ओर देखकर मुस्करा रही थी और मेरी समझमें नहीं आ रहा था कि मैं क्या कहूँ। बुखार तो उनकी समझमें साधारण चीज थी और उसके लिये चार दिनोंतक गैरहाजिर रहना बेवकूफीकी बात थी।

उन्होंने, उसी लहजेमें, फिर कहा—'यदि आपको मुझे बतानेमें शर्म लगती हो तो पड़ोसके साथीको बता दीजिये, मैं उससे दरयाफ्त कर लूँगा।'

सारी क्लासकी मुस्कराहट फूटनेको हो गयी। आखिर मैंने कह ही दिया, 'सर! बात यह है कि मुझे फेवर आ गया था।' घबराहटमें 'फीवर' (fever) की जगह मुखसे 'फेवर' निकल गया।

अब इसके बाद उन्होंने मुझे जो बेवकूफ बनाना शुरू किया तो सारे पीरियडपर यही करते रहे—पढ़ाया-लिखाया, कुछ भी नहीं।

एक तो वैसे ही मेरी तबीयत ठीक नहीं थी, फिर क्लासके लड़कोंकी हँसी और × × × × जीके व्यङ्ग्यबाणोंसे मैं इतना मर्माहत हो उठा कि तीसरे पीरियडके बाद ही घर आकर खाटपर लेट रहा और फिर दोबारा चार दिनोंके बाद ही कालेज जा सका। गनीमत यह हुई कि दूसरी बार × × × × जी केवल यही पूछ कर रह गये—चार दिनोंतक कालेज क्यों नहीं आये?—और इसका उत्तर सुनकर फिर उन्होंने कुछ न पूछा।

उस दिन, भरी क्लासमें × × × × जीने मेरा मज़ाक उड़ाकर, मुझे जो वेदना पहुँचायी थी, वह आजतक मुझे याद है और यही कारण है कि मैं किसी भी लड़केको वेदना नहीं पहुँचाना चाहता, किसीकी हानि नहीं करना चाहता, किसीको भी दुखी नहीं करना चाहता और हर एकको यथासम्भव संतुष्ट तथा प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करता हूँ।

इतना कहकर वर्माजी चुप हुए और मैं सोचने लगा—काश, सभी व्यक्ति इस घटनासे शिक्षा ग्रहण करते।

—कुमार 'स्वदेशी'

(३)

सच्चे दर्शन

रेलगाड़ी जामनगरका प्लेटफार्म छोड़कर धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी। जामनगरसे एक सद्‌गृहस्थ अपने कुटुम्बके साथ गाड़ीपर सवार हुए थे। अनुभवी तथा भावुक-जैसे ये सज्जन ठीक मेरे सामने ही बैठे थे। गाड़ी चलनेपर लगभग दस मिनिट तो ये अपना सामान जचाते रहे। तदनन्तर किस विषयपर बात चलायी जाय—मानो यों सोचते हुए ये मेरी ओर नजर करके देखते रहे।

अन्तमें—जैसे अकस्मात् विषय मिल गया हो, वैसे बोल उठे—'क्यों! आपको ओखातक जाना है?'

मैंने कहा—'नहीं! द्वारकातक ही जाना है।'

'तब तो हमलोग साथ ही रहेंगे। मैं तो बहुत बार हो आया हूँ, परंतु इस बार तो सारे कुटुम्बको द्वारकाधीशके दर्शन कराने हैं।' उन्होंने कहा।

मैंने उनकी बातका समर्थन किया और आतुरताके साथ उनकी बातें सुनने लगा। आजकी शिक्षा, विद्यार्थी, शिक्षक, शिक्षाविभाग, शिक्षा-अधिकारी, भारतसरकार आदि विषयोंपर वे चर्चा करने लगे। मैं केवल हुँकारा देता हुआ उनकी बातें सुन रहा था और आतुरताके साथ उनके थकनेकी बाट देख रहा था।

आखिर मैं उपन्यास लेकर पढ़ने लगा। इसी समय अकस्मात् यात्रियोंकी जय-जयकारकी ध्वनि सुनायी दी, तब मैंने उठकर सामान तैयार किया। गाड़ी रुकी। मेरे साथी सद्‌गृहस्थसे संध्याकी आरतीमें मिलनेका वादा करके मैं उनसे अलग हो गया।

संध्याको बाजारमें घूम-फिरकर मैं मन्दिरमें पहुँचा। आरती शुरू हो गयी थी। मैं पीछे खड़ा हो गया। वे सज्जन कुछ आगे खड़े थे। आरती पूरी होनेपर उन्होंने अपने लगभग आधे दर्जन बच्चोंको चढ़ानेके लिये खुदरा पैसे दिये और स्वयं हाथ जोड़े खड़े रहे।

मेरा ध्यान उन्हींकी ओर लगा था। उन्होंने जेबमेंसे नकद एक रुपया निकालकर हाथ लंबा किया, इसी बीच अचानक उनका ध्यान बगलमें खड़े एक भिखारीकी ओर गया। एक पैरसे लँगड़ा और अंधा वह भिक्षुक लकड़ी टेके हाथ फैलाये खड़ा था। उन्होंने कृष्णभगवान्‌की मूर्ति और भिक्षुककी ओर बारी-बारीसे देखा और मुझे लगा कि वे अभी भिक्षुकको कुछ सुना देंगे। परंतु मैंने क्या देखा? उन्होंने रुपया भिक्षुकके हाथपर रख दिया और फिर वे भगवान्‌की मूर्तिके सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे। मेरे आश्चर्यका पार न रहा।

कुछ देरके बाद वे बाहर निकले और मेरे साथ बातचीत करने लगे। अब उनकी धार्मिक बातोंमें मुझे बड़ा रस आने लगा। मानो मेरी शङ्काका समाधान कर रहे हों—इस प्रकार वे एकाएक बोल उठे—'आज मुझे श्रीकृष्णके सच्चे दर्शन हुए। आज तो मानो भगवान् मेरी ओर अपना स्मित बिखेर रहे थे।'

उनके हृदयकी बात सुननेके लिये इतने शब्द पर्याप्त थे। मुझे लगा कि धर्म इसीका नाम है। देवता मूर्तिमें ही नहीं, रोटीके टुकड़ेके लिये बिलबिलाते जीवित मनुष्योंमें बसते हैं। यदि प्रत्येक मनुष्य दरिद्रोंमें नारायणके दर्शन करे तो! 'अखण्ड आनन्द'

—त्रिभुवन एन० कापडी

(४)

ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ पुलिसकर्मचारी

दिनाङ्क १४। ४। ६६ को मैं रेलवे स्टेशन सफ़ाईसे तिनसुकिया जा रहा था। तृतीय श्रेणीके एक डिब्बेमें मैं बैठा था। हाथमें एक प्लास्टिक-बैग था जिसमें सात हजारके नकद नोट थे तथा साथमें कुछ सुपारियोंका (३० सेरका) एक छोटा बस्ता था। ज्यों ही गन्तव्य स्टेशनपर पहुँचा, मैंने खिड़कीसे झाँककर एक कुलीको आवाज दी। मैंने अपने हाथका वह बेग सीटपर रक्खा तथा वह सुपारियोंका बस्ता उस कुलीके सिरपर रखवाया। तुरंत मैंने प्लास्टिक-बैगको उठानेके लिये हाथ बढ़ाया तो स्तब्ध रह गया। पासमें ही खड़ा एक लड़का उसे लेकर नौ-दो-ग्यारह हो चुका था।

मैंने तत्काल ही Railway Protection Force के पुलिसमैनोंसे, जो प्लेटफार्मपर वहीं पासमें खड़े थे, सहायता माँगी लड़केको पकड़नेके लिये। उन्होंने दौड़-धूप शुरू की, पर लड़का न जाने कहाँ छिप चुका था।

मैंने मन-ही-मन कातर भावसे उस दयालु परमेश्वरको पुकारा। पर पुलिसवालोंके यह कहनेपर कि अब पता चलना सम्भव नहीं, मैंने प्लेटफार्म छोड़ दिया और उदास मनसे शहर जानेके लिये स्टेशनके पीछे पुलकी सीढ़ियोंपर चढ़ने लगा।

इतनेमें ही पीछेसे एक अन्य पुलिसमैनने आवाज दी। मैंने उसकी ओर मुड़कर देखा और तत्काल उसके पास दौड़ा आया। उसके हाथमें वही अपना प्लास्टिक-बैग देखकर मैं हर्षसे उछल पड़ा और उस पुलिसवालेके चरण छूकर उसे प्रणाम किया।

पुलिसवालेके कहनेपर मैंने बैग खोलकर देखा, उसमें पूरी-की-पूरी रकम—सात हजार रुपये ज्यों-की-त्यों थी। उसने

बताया कि उधर कॉलोनीकी तरफ एक लड़का इसे लेकर उतावलीमें जा रहा था; संदेह होनेपर वह पुलिसवाला उसकी ओर दौड़ा। लड़का इस भयसे कि पुलिसवाला पकड़कर पीटेगा, वह बैग फेंककर बड़ी तेजीसे दौड़ पड़ा। पुलिसवालेने यह बैग लाकर मुझे दिया।

यदि यह पुलिसवाला सावधानी न बरतता तथा बैग मिलनेके बाद भी लोभके वशीभूत हो जाता तो मुझे इस बड़ी रकमसे हाथ धोना पड़ता। मैं आर. पी. एफ आफिसमें गया और उस पुलिसवालेकी भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा इसकी कर्तव्यनिष्ठाके कारण पदोन्नतिकी प्रार्थना भी। पूछनेपर इस पुलिसवालेने अपना नाम एच्० के० दे० (H. K. Dey) बतलाया।

उसके बार-बार मना करनेपर भी सिर्फ इसी भावसे कि अन्य लोगोंके मनमें भी इस ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठाको देखकर उत्साहकी वृद्धि हो, मैंने एक अत्यन्त तुच्छ रकम (मात्र एक सौ रुपये) उसके हाथमें थमाकर पुरस्कृत किया।

घर लौटते वक्त मेरी खुशीका ठिकाना न था।

—हीरालाल गोदूका

(५)

भयानक कुकृत्यका भयंकर परिणाम

घटना अधिक पुरानी नहीं है; कुछ ही वर्षों पूर्वकी बात है। यह अक्षरशः सत्य है। इसमें कला एवं कल्पनाका अल्पांश भी नहीं है। घटनाके पात्रों एवं स्थानके नामोंका उल्लेख जान-बूझकर नहीं किया जा रहा है।

जिला···के···गाँवमें दो भाई साधारणतया कृषिकार्य करते हुए सरलतासे गृहस्थीका भार वहन करते थे। उनके पास एक बैलोंकी बड़ी ही सुन्दर जोड़ी थी। एक दिन संध्याकालमें दो ग्राहक बैल खरीदने आये। सौदा बारह सौ रुपयेपर तय हो गया। पर बात करते-करते रात्रि हो गयी। कृषक बन्धुओंने निश्छल भावसे उन ग्राहकोंसे अपने घरमें ही आतिथ्य ग्रहण करनेका आग्रह किया। ग्राहकोंको तो रात्रि-निवास करना ही था, उन्होंने सहज ही आतिथ्य स्वीकार कर लिया।

भोजनोपरान्त ग्राहकोंके शयनादिका प्रबन्ध 'बरोठा' में कर दिया गया। 'बरोठा' लोकभाषामें घरके उस कमरेको कहते हैं, जिसमेंसे होकर मार्ग मकानसे द्वारको जाता है। अर्थात् उसकी दोनों (दीवालोंमें दरवाजे होते हैं)। ग्राहक सो गये।

इधर कुछ देर बाद उन दोनों कृषक बन्धुओंके हृदयमें लोभ जाग उठा, लोभ पापका मूल है। उन दोनोंने ग्राहकोंकी हत्या करके उनका धन अपहरण करनेकी पापपूर्ण योजना बनायी, तथा दोनोंने अपनी पत्नियोंको भी इस कार्यमें सहयोगी बनाया कि लाशोंको गाड़नेका प्रबन्ध पहले ही कर लिया जाय। यह सोचकर वे घरके बिल्कुल समीपमें लगे हुए ईखके खेतमें गड्ढा खोदनेका निश्चय करके अतिशीघ्र कार्यमें संलग्न हो गये।

× × ×

दैवयोगसे गाँवके एक प्रतिष्ठित सज्जनको टट्टीकी हाजत हुई। अतः वे सज्जन गाँवके निकटतम होनेके कारण उसी खेतमें गये। खेतमें बड़ी खड़खड़ाहट हो रही थी। अतः उन्होंने शान्त होकर ध्यान दिया तो दो व्यक्तियोंकी मन्द परंतु सतर्क बात-चीत करनेकी आवाज सुनी। अतः वे रहस्य जाननेके लिये बड़ी ही सावधानीसे उनके समीप जाकर चुपकेसे उनका कार्य देखने तथा बातचीत सुनने लगे। जब उन्हें उनके कार्यों तथा बातोंसे योजनाका पता लगा, तब वे तुरंत उन किसानोंके घर पहुँचे, कमरेका दरवाजा खुला ही मिला। उन सज्जनने ग्राहकोंको जगाया। जागनेपर वे दोनों बड़े चकित हुए और जगानेका कारण पूछने लगे; परंतु उन सज्जनने बिल्कुल चुप रहनेका संकेत किया और बिना कुछ कहे अपने पीछे आनेको कहा। पता नहीं कैसे वे दोनों रात्रिमें अचानक जगकर भी उस अपरिचित व्यक्तिके पीछे बिना कुछ तर्क-वितर्क किये चल दिये; यह बात अस्वाभाविक अवश्य प्रतीत होती है। निश्चय ही यह ईश्वरीय प्रेरणा थी।

उन किसान बन्धुओंके एक-एक पुत्र था। वे दोनों गाँवमें एक जगह हो रहा नाटक देखने गये थे। नाटकके बीचमें एक बच्चेको बड़े जोरसे नींद आने लगी, अतः इच्छा न होनेपर भी उसने अपने दूसरे भाईको घर चलनेके लिये बाध्य कर दिया, घर आनेपर उन्हें भी द्वार खुला मिला तथा एक बिस्तर भी लगा मिला। अतः उन दोनोंने सोचा कि सम्भवतः यह बिस्तर हम दोनोंके लिये लगा दिया गया है। अतः वे दोनों वहीं लेट गये और लगभग १५। २० मिनटमें नाटकके कलाकारों एवं नृत्य आदिपर टीका-टिप्पणी करते रहे। तदनन्तर सो गये।

तदुपरान्त वे दोनों कृषकबन्धु लाश गाड़नेके लिये गड्ढा तैयार करके आ गये और पूर्वनिश्चित योजनाके अनुसार उनकी पत्नियोंने कटार हाथोंमें लेकर जल्दी-जल्दी एक-एक पुत्रका वध कर दिया, वे यह न देख पायीं कि किसको मार

रही हैं। उन कुमारोंके पिता-चाचाने भी जल्दी-जल्दी उनके कपड़ोंकी खूब तलाशी ली; परंतु कहीं भी वह अर्थराशि उन्हें न मिली। झुँझला-घबराकर तुरंत लाशोंको उठाकर पूर्वनिर्मित गड्ढेमें बड़ी सावधानीसे गाड़ दिया। यद्यपि कुमारों-की लाश तथा युवकोंकी लाशके भार आदिमें बड़ा अन्तर होता है, फिर भी वे घबराहटमें कुछ न जान सके। शवोंको गाड़नेके बाद घबराहटके होते हुए भी उन चारोंने राहतकी साँस ली। पर पैसा न मिलनेके कारण उन्हें बड़ा पश्चात्ताप था। पकड़े जानेका भय तो था ही।

प्रातःकाल उन कृषक-बन्धुओंने ग्राहकोंको प्रातःकालीन क्रिया करते हुए देखा, तब तो वे सन्न रह गये तथा पुत्रोंके न लौटनेके कारण उन्हें भयानक धक्का लगा। उन दोनोंने तुरंत जाकर गढ्ढेको खोदकर लाशें निकालीं। अब क्या था, मासूम पुत्रोंके मृत शरीर खून-मिट्टीमें लथपथ सामने पड़े थे। फिर क्या था, यह पापमयी घटनाकी सूचना बिजलीकी भाँति गाँवमें, जिलेमें तथा अन्य जिलोंमें भी फैल गयी। उन पापबुद्धि किसानोंकी जो दुर्दशा इस समय थी, वह देखी नहीं जाती।

—जीवरनलाल मौर्य

(६)

होटलके नौकरकी ईमानदारी

बात ४ मई ६६ की है। हमारे गाँवका नापा नामक एक कोरकू आदिवासी कुछ जमीन खरीदनेके लिये ५०००) (पाँच हजार) रुपये एक कपड़ेकी थैलीमें लेकर खेतकी रजिस्ट्री कराने अपने कुछ साथियोंके साथ बुरहानपुर रजिस्ट्री आफिसमें गया हुआ था। रजिस्ट्री-कार्यमें विलम्ब देखकर वह जलपानके लिये अपने साथियोंसहित श्रीसेठ मौजीलाल घनश्यामदासके होटलमें गया। वहाँ ऊपरके मंजिलेमें बैठकर सबने जलपान किया। जलपानके पश्चात् सभी लोग वापस आ गये; परंतु रुपयोंकी थैलीपर किसीका ध्यान नहीं रहा। थैली वहीं छूट गयी और उसे होटलके एक नौकरने, जिसका नाम स्मरण नहीं है, उठाकर बड़ी सावधानीसे अपने पास रख लिया।

उधर जब रजिस्ट्री आफिसमें रुपयोंकी आवश्यकता हुई, तब सबके होश उड़ गये। थैलीकी तलाशमें जब होटलमें गये, तब उक्त होटलके ईमानदार नौकरने ५०००) रुपयोंकी थैली उस आदिवासीको वापस कर दी। आदिवासीने नौकरको कुछ पुरस्कार देना चाहा, परंतु उसने कुछ स्वीकार नहीं किया।

आज भी ऐसी चाटुकारी दुनियामें सज्जनोंका वास है, जो अपने नैतिक चरित्रसे समाजका मार्ग-दर्शन करते हैं। यदि ऐसा ही स्वभाव सबका हो जाय तो रामराज्य दूर नहीं।

—विश्वम्भरनाथ दीक्षित

(७)

'ईमान'की कमाई

बात कोई पंद्रह-बीस साल पहलेकी है। दिन-तिथि तो स्मरण नहीं, प्रातःकालका समय था। मैं द्वारपर बैठी अपना मन प्रकृतिकी अनुपम आभासे बहला रही थी, अचानक एक आवाज सुनायी दी—'दरी लो, दरी।' देखा, एक तरुण पीठपर गट्ठर बाँधे मेरे घरकी ओर बढ़ता आ रहा है। पास आकर उसने अपना गट्ठर खोलकर कई दरियाँ मेरे सामने फैला दीं। एक दरी मुझे पसंद आयी और मैं युवकसे मोल-भाव करने लगी। परंतु युवक किसी भी तरह चौदह रुपये पंद्रह आनेसे एक पैसा भी कम करनेको तैयार नहीं हुआ और बोला, 'बहनजी! सुबह-सुबह ईमानसे सही दाम मैंने बताये हैं।'

दरी मुझे पसंद थी, अतएव मैंने पंद्रह रुपये दे दिये; क्योंकि एक आना बाकी उसके पास नहीं था; मैंने उससे कहा कि 'वह बाकी पैसे फिर कभी दे जाये।'

× × × ×

काफी अरसा बीत गया। मैं एक आनेकी बात भूल गयी थी। अचानक एक दिन क्या देखती हूँ कि एक बूढ़ा-सा आदमी मकानके आसपास चक्कर काट रहा है। मेरी उत्सुकता जगी तो मैंने आगे बढ़कर उससे पूछा कि वह क्या ढूँढ़ रहा है। बुड्ढा बड़े दुखी स्वरमें बोला—'मेरा बेटा कुछ दिन पहले इस शहरमें दरी बेचने आया था। वापस लौटनेपर वह बीमार पड़ गया और ईश्वरका प्यारा हो गया। मरनेके कुछ घंटे पहले उसने इस मकानका पता बताते हुए अपनी अन्तिम इच्छा व्यक्त की थी कि उसके ऊपर १ आनेका जो कर्जा बाकी है, वह मैं चुका आऊँ। फुटकर पैसा न होनेके कारण उस दिन वह एक आना नहीं चुका सका था।' बूढ़ेकी आँखें नम हो आयीं और वह बोला—'मेरे बेटेके अन्तिम शब्द थे, जीवनभर मैंने ईमानदारीसे रोजी कमायी है; अतः मौतके बाद भी यह कोई न कह सके कि मैंने किसीका पैसा रख लिया है।' मेरी भी आँखें भर आयीं। इस घटनासे 'ईमानदारी' मेरे जीवनका शाश्वत सिद्धान्त बन गयी। 'धर्मयुग'

—प्रमिला शर्मा

श्रीगीता-रामायणकी आगामी परीक्षाएँ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस—ये दो ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनको प्रायः सभी श्रेणीके लोग विशेष आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। इसलिये समितिने इन ग्रन्थोंके द्वारा धार्मिक शिक्षाका प्रसार करनेके लिये परीक्षाओं-की व्यवस्था की है। उत्तीर्ण छात्रोंको योग्यतानुसार पुरस्कार भी दिया जाता है।

परीक्षाओंके लिये स्थान-स्थानपर लगभग ५०० केन्द्र भी स्थापित हैं तथा और भी नियमानुसार स्थापित किये जा सकते हैं। आगामी गीता-परीक्षाएँ दिनाङ्क २० एवं २१ नवम्बर १९६६ को एवं श्रीरामायणकी परीक्षाएँ दिनाङ्क ८ एवं ९ जनवरी १९६७ को होनेवाली हैं।

केन्द्र-व्यवस्थापकोंसे निवेदन है कि सभी परीक्षाओंके लिये आवेदनपत्र एवं नवीन केन्द्रोंके लिये प्रार्थनापत्र दिनाङ्क ३० अगस्त १९६६ तक भेज देनेकी कृपा करें।

विशेष जानकारीके लिये पत्र लिखकर नियमावली मँगा सकते हैं।

व्यवस्थापक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम, वाया ऋषिकेश (देहरादून) उ० प्र०

आवश्यक सूचना

कुछ दिनों पूर्व गीताप्रेसके विभिन्न विभागोंके लिये कुछ कार्यकर्ताओंकी आवश्यकताके सम्बन्धमें एक विज्ञप्ति 'कल्याण'में छपी थी। उसके फलस्वरूप इतनी अधिक संख्यामें आवेदनपत्र आये हैं कि उन सबको पढ़कर चुनाव करना कठिन हो रहा है। अतएव यह निवेदन है कि अब कोई सज्जन आवेदनपत्र कृपया न भेजें। जो सज्जन आवेदनपत्र भेज चुके हैं, वे बार-बार पत्र न लिखें। चुनावमें जो आयेंगे, उनके पास समयपर सूचना आप ही पहुँच जायगी।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर

रजि० सं० एल० १७५

गोहत्या बंद करानेके लिये भगवद्-आराधन

सर्वदलीय गोरक्षा-महाभियानको सफल बनाइये

आस्तिक जनतासे अनुरोध

भारतीय धर्म, कर्म, सभ्यता, संस्कृतिका मूल स्रोत, राष्ट्र एवं विश्वके सर्वविध अभ्युदयका आधार और भगवान्‌का परम प्रिय गोवंश है। गोहत्यासे ही देशका आध्यात्मिक, धार्मिक, आर्थिक पतन एवं स्वास्थ्यका विनाश उत्तरोत्तर होता जा रहा है तथा देशमें भीषणतम अन्नसंकट छाया हुआ है। जबतक समग्र भारतसे समस्त गोवंशकी हत्या पूर्णतया बंद न होगी, तबतक देशमें न तो सुख-शान्ति होगी और न सांस्कृतिक उत्थान एवं राष्ट्ररक्षा ही होगी। अबतक हमलोगोंने गोवध बंद करानेके लिये अनेक उपाय किये; किंतु सरकारने इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं किया। अतः अब हमने संयुक्तरूपसे कड़ा कदम उठानेका निश्चय किया है।

कुछ महाविभूतियाँ गोपाष्टमी संवत् २०२३ तदनुसार २० नवम्बर १९६६ से गोहत्याबंदीके लिये आमरण अनशनव्रत करनेका निश्चय कर चुकी हैं। निर्बल एवं बलवान्‌का भी परम बल आर्तत्राणपरायण अशरणशरण भगवान् ही हैं।

अतः समस्त भारतीयोंको गोहत्या-बंदीके संकल्पकी पूर्तिके निमित्त व्रत, उपवास, यज्ञ, जप, होम, पूजा, पाठ आदिद्वारा भगवद्-आराधनमें अपने-अपने विश्वासानुसार आज ही प्रवृत्त हो जाना चाहिये। आचार्यों, मुनियों, वैदिकों, ग्रन्थियों एवं अन्य समस्त सज्जनोंको अखण्ड रुद्राभिषेक, दुर्गापाठ, विष्णु-सहस्रनाम-पाठ, भगवन्नाम-कीर्तन एवं अपने-अपने इष्टदेवकी आराधना विशाल पैमानेपर करनी चाहिये तथा उसकी सूचना 'कल्याण' कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुरमें भेजनी चाहिये।

गोवध-बंदीके लिये जितना भी प्रयत्न कर सकते हों, करना चाहिये, जिससे कि अनशनव्रत तथा अन्यान्य प्रत्यक्ष प्रयत्न करनेवालोंको बल मिले तथा भारतमाताके भालसे गोवधका कलङ्क दूर हो जाय।*

स्वामी करपात्री	मुनि सुशीलकुमार
प्रभुदत्त ब्रह्मचारी	हनुमानप्रसाद पोद्दार
गुरुचरणदास (अध्यक्ष, भारत-साधु-समाज)	

* समस्त भारतमें कानूनके द्वारा गोहत्या पूर्णरूपसे बंद होनी ही चाहिये। सरकार कृपापूर्वक शीघ्र ऐसा कानून बना दे, इसीलिये यह प्रयास हो रहा है। साथ ही जो हिंदू समर्थ हों, सबको एक-एक गाय अवश्य रखनी चाहिये। गौ अधिक-से-अधिक दूध दे तथा मजबूत साँड़-बैल हों, इसके लिये नस्ल-सुधारका काम भी होना चाहिये। एजेंट, दलाल, व्यापारी, इन्स्पेक्टर, डाक्टर आदिके रूपमें जो लोग गोहत्यामें सहायता कर रहे हों, उनको इस सहायतासे बचना चाहिये तथा समाजसे सर्वत्र उनको तिरस्कार मिलना चाहिये। सरकारी बुद्धि ठीक हो तथा गोहत्या-निवारणके लिये प्रयत्न करनेवालोंको सात्त्विक बल एवं साहस मिले, इसके लिये विभिन्न सभी सम्प्रदायोंके हिंदू, जैन, सिख, बौद्ध आदि सबको अपने-अपने विश्वासके अनुसार कम या अधिक देवाराधन तथा भगवत्प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये।

करोड़ों लोग आराधना करने लगेंगे तो उसका बड़ा प्रभाव होगा।

हनुमानप्रसाद पोद्दार